॥ॐ॥ वन्दे श्री गुरु तारणम् ॥ॐ॥

श्रीमत्परमपूज्य १००८ श्री तारण तरण मंडलाचार्य विरचित

आचार-मत

अपर नाम–

श्री तारण तरण श्रावकाचार



पद्यानुवादक–

स्वस्तिश्री १०५ क्षु० श्री जयसेन जी महाराज

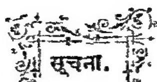


प्रकाशक–

श्रीमान् दानवीर सवाई सिंघई हीरालालजी
नौखेलाल जी सिंगोड़ी (छिन्दवाड़ा)
वालों की ओर से सप्रेम–भेंट



प्रथमवार १,५०० | श्री तारण सं० ४२१ | मूल्य चारित्र-सुधार





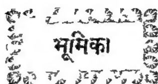
यद्यपि इस ग्रंथ के छपाने में हमारे द्वारा अत्यन्त सावधानी रक्खी गई, फिर भी भूल से कहीं २ कुछ शब्दों की गल्ती हो गई है। किन्तु यह गल्ती ऐसी नहीं है जो पाठकगण न सुधार सकें, अतएव क्षमा प्रदान करते हुये विचार पूर्वक प्रकरणानुसार शब्द संशोधन सहित इस ग्रन्थ को अध्ययन करने की कृपा करें, ऐसी समस्त सज्जनवृन्द के प्रति हमारी प्रार्थना है।

तथा ग्रन्थ को सावधानी सहित विनय पूर्वक सम्हाल कर सुरक्षित रखने की भी कृपा करें।

भवदीय—
दि० ठकरलाल जैन.
कुन्डा (छिन्दवाड़ा)

॥*॥ ओम् श्री तारण गुरुवे नम ॥*॥







पाठको !

'आज म इस बात का गौरव रखता हुआ कि जिस श्री १००८ तारण-तरण श्रावकाचार का निर्माण प्रातः स्मरणीय श्रद्धेय श्री गुरू तारण तरण मंडलाचार्य जी महाराज ने वि० सम्वत् १५५० के लगभग ४६२ गाथाओं में संकलन किया था। उसही अपूर्व ग्रन्थ का सरल रूप भाषानुवाद पद्य में **स्वस्ति श्री १०५ क्षुल्लक श्री "जयसेन जी" महाराज** ने अपनी क्षुल्लक दीक्षा तिथि फाल्गुन शुक्ल षष्ठी वि० सम्वत् १९९५ के पूर्व चातुर्मास में अपने सप्तम प्रतिमा ब्रह्मचर्य अवस्था में" करके सर्व साधारण का एक महान उपकार किया है, क्योंकि जब तक यह महान ग्रन्थ गाथा रूप में रहा, तब तक हम अल्पज्ञ सर्व साधारण जनता के लिये बिना किसी एक विशेष विद्वान के बिना इसका अर्थ और भावार्थ समझना क्लिष्ठ प्रतीत होता था। हा यह ठीक है कि पूज्य १००८ श्री गुरू महाराज के आध्यात्मिक वचन बिना विशेष अर्थ भावार्थ के समझे बिना ही हमारी आत्मा में अपने भाव और भावार्थ

का प्रवेश करने में समर्थ हैं और होना ही चाहिये, क्योंकि आत्मज्ञानी महान पुरुष के अध्यात्म वचनों का ऐसा ही महात्म है फिरभी हम स्वास्ति श्री १०५ चुल्लक श्री "जयसेन" जी महाराज के अत्यन्त आभारी हैं, और हमारी तारण पथीय समस्त समाज तो क्या वह प्रत्येक जैन अजैन आत्माऐं जो जो भी इस भाषा पद्यानुवाद ग्रन्थ "श्री तारण तरण श्रावकाचार" का पाठ करके अपने श्रावक-आचार को पवित्र अध्यात्म रूप करने और प्रत्येक आचरण में आत्मिक आनन्द का लाभ लेंगे वे सबही आप श्री चुल्लक जी महाराज के चिर आभारी रहेंगे। क्योंकि आपने "सोने में सुगन्धि" वाली कहावत को चरितार्थ कर दिया है। एक तो यह ग्रन्थ श्री श्रावकाचार कि जिसमें श्री तारण स्वामी महाराज ने श्रावकों के लिये ऐसे आचरण पालन करने का उपदेश किया है, कि हे श्रावक जनों! यही आचरण सच्चा आचरण और मोक्ष मार्ग में सहायक होगा, कि जिस आचरण में अध्यात्म भाव का सम्मिलन हो, यदि आपका आचरण अध्यात्म भाव कर रहित होगा तो कभी मोक्ष मार्ग में सहायक न होगा। ऐसे अनुपम भाव का कराने वाले निर्माता १००८ श्री तारण तरण मंडलाचार्य जी जैसे अध्यात्म रसी महान तपस्वी कि, जिन्होंने अपने वचन बल से ५,५३,३१९ जैन अजैन भव्य आत्माओं को अपने अनुभूति जैन धर्म के मर्म को बताने वाले "तारण पंथ" धर्म से दीक्षित कर अपना नहीं प्रत्युत १००८ श्री जिनन्द्र के मार्ग में स्थापित किया। ऐसे श्री गुरू तारण तरण मंडलाचार्य जी महाराज द्वारा तो जिस ग्रन्थ १००८ श्री श्रावकाचार जी का निर्माण हुआ, और जिसका भाषा पद्यानुवाद सरल दोहा चौपाई रूप में एक वीर युवक धुरन्धर

विद्वान द्वारा हुआ है, जो कि मोह फाँसि तोड़कर आज तपोवन में बैठकर अपनी आत्मा के कल्याण करने के साथ २ हजारों जैन अजैन आत्माओं को अपने उपदेशामृत पान से तृप्त कर रहे हैं। ऐसा यह अपूर्व ग्रन्थ जिसकी महिमा वर्णन करना तो वचनातीत है, और मेरी नीति भी यही है कि वस्तु के गुणगान नहीं करना प्रत्युत वस्तु को समक्ष रख देना और उसमें क्या २ गुण हैं, यह निर्णय गुणग्राही पाठकों के आधीन छोड़ देना ही श्रेयस्कर है। अतएव यह ग्रन्थ **श्री श्रावकाचार जी** आपके कर कमलों में भेंट स्वरूप, **दानवीर सवाई सिंघई हीरालाल जी नोंखेलाल जी** स्थान **सिंगोड़ी** (छिंदवाड़ा), वालों की तरफ से भेजा जा रहा है। आशा करता हूं कि इस भेंट को अपना कर आप अपना कल्याण करने में समर्थ होंगे, और आपके कल्याण रूप मेरी भावना को सफल करेंगे।

विनीत—
मंत्री गुलाबचन्द्र - ललितपुर





ग्रन्थ परिचय





श्री तारण तरण श्रावकाचार अव्रत सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थान वर्ती जीव से लगाय पचम गुणस्थानीय उत्तम श्रावक क्षुल्लक ऐलक पदधारी श्रावक के अध्यन योग्य एक अपूर्व ग्रन्थ है। इसमें **१००८ श्री तारण तरण मंडलाचार्य जी महाराज** न जो कि तारण पथ धर्म के निर्माता हुये हैं, उन्होंने इस ग्रन्थ की रचना ऐसे शैली से की है कि यदि यह मनुष्य देश काल बल इत्यादि की अनुकूलता नहीं पा सकने के कारण किन्ही विशेष कठिन तप व्रत आदिकों का पालन न कर सके, तो अपनी भावनाएँ तो ऐसी पवित्र अध्यात्मीक बनालें, कि जो भावना सस्कार इस जीव को परभव में मोक्ष मार्ग में आरूढ कर सकने समर्थ हों। और यदि कोई विरल भव्य आतमा अपने प्रयोग बल स भी श्रावक पद की जिसकी सीमा ग्यारहवीं प्रतिमा क्षुल्लक ऐलक यह पर्यन्त है, उसे धारण करने समर्थ हो वह भी यथार्थ मुनि भावनाओं का परिज्ञान कर सकें, क्योंकि वास्तव में तो दिगबर पद ही एक मोक्षमार्ग है।" विशेष, ग्रथ का स्वाध्याय करने वाले सज्जन ग्रथ का परिचय पा सकेंगे।

मंत्री गुलाबचन्द्र



विषय सूची



॥ वन्दे श्री गुरु तारणम् ॥

श्रीमत्परम पूज्य १००८ श्री तारण तरण मंडलाचार्य विरचित्-

श्री तारण तरण-श्रावकाचार

दोहा-पद्यानुवाद



-: मंगलाचरण-देव को नमस्कार -

देवदेवं नमस्कृत्यं, लोकालोक प्रकाशकं ।
त्रैलोक्य भुवनार्थ ज्योति, ऊंकारं च वंदते ॥१॥



श्री जिनेन्द्र को नमन कर, तीन लोक में सार।
लोका लोक प्रकाशती, ज्योति नमूं ओंकार ॥१॥



ऊं ह्रियं श्रियं चिन्त्यं, शुद्ध सद्भाव पूरितं ।
सम्पूर्णं स्वयं रूपं, रूपातीतं च संयुतं ॥२॥



ओम् ह्रीम् श्रींकार को, चिन्तन कर सद्भाव।
ब्रह्म पूर्ण निज रूप को, ध्याऊं शुद्ध स्वभाव ॥२॥



नमामि सतत भक्त्या, अनादि ?ादि शुद्धये ।
प्रति पूर्ण ति अर्थ शुद्ध, पच ?दि? गाम्पहम् ॥३॥



नमन करू नित भक्तिसे, जो अनादि कर शुद्ध ।
पूर्ण अर्थ तीनों सहित, पच दिप्ति हैं शुद्ध ॥३॥



परमेष्ठी परज्योती, आचरण नत चतुष्टय ।
ज्ञान पच मय शुद्ध, देव देव नमाम्यहम् ॥४॥



परम ज्योति परमेष्ठि जो, चार चतुष्टय वत ।
ज्ञान पच मय शुद्ध अति, नमू देव अरहत ॥४॥



अनत दशन ज्ञान, वीर्यं नत अमूर्तय।
विश्व लोक स्वय रूप, नमाम्यह ध्रुव शाश्वत ॥५॥

दर्शन ज्ञान अनन्त जँह, वीरज सुख ये चार।
नमू स्वयं शाश्वत मयी, विश्व तत्व ज्ञातार ॥५॥

नमस्कृत्य महावीर, केवल दृष्टि दृष्टित,
व्यक्त रूपी अरूपी च, सिद्ध सिद्ध नमाम्यहम् ॥६॥

महावीर को नमन कर, केवल दृष्टि अनूप।
व्यक्त रूप विन रूप जो, नमू सिद्ध शिवरूप ॥६॥

केवरी नत रुपी च सिद्ध चक्र गणानिम ।
वक्ष्यामि त्रिविधि पात्रच केवल दृष्टि जिनागम ॥६॥

सिद्ध चक्र गण केवली, नमू अनन्ता नन्त।
त्रिविधि पात्र लक्षण कहू, ज्यों जिनवर सिद्धान्त॥७॥

* श्री गुरु को नमस्कार *

साधनो साधु लोकेन, ग्रथ चेल विमुक्तय ।
रत्नत्रय मय शुद्ध, लोका लोकन लोकित ॥८॥

पच चेल चौवीस परि-ग्रह से रहित निरूच्छ।
रत्नत्रय साधैं सुधी, साधु लक्ष गुणमाल ॥८॥

सम्यक्त्व शुद्ध गुरु दृष्ट शुद्ध तत्त्व प्रकाशक ।
ध्यान च धर्म शुक्ल च, ज्ञानन ज्ञान लकृत ॥९॥

शुद्ध दृष्टि सम्यक्त्व की, तत्व प्रकाशन हार।
धर्म शुक्ल ध्यानी वडे, ज्ञानी श्री गुरु तार ॥६॥

आर्त रौद्र परित्याज्य, मिथ्या त्रय न दृष्टे ।
शुद्ध धर्म प्रकाशी भूत्वा, गुरु त्रैलोक्य वंदित ॥१०॥

आर्त रौद्र त्यागें सभी, त्रय मिथ्यात नशाय।
शुद्धातम परकाशते, त्रिजग वन्द्य गुरुराय ॥१०॥

* शास्त्र को नमस्कार *



सरस्वती शाश्वती दृष्टा, कमलासन कंठ स्थित।
उन ह्रिय श्रिय शुद्ध त्रिअर्थं प्रति पूर्णं त ॥११॥



सरस्वती जिनराज की, कंठ कमल आसीन।
ओम् ह्रीम् वा श्रीं मय, अर्थ प्रकाशे तीन ॥११॥



कुज्ञान त्रिनिर्मुक्त, मिथ्या छाया न दृश्यते।
सर्वज्ञ मुख वाणी च, बुद्धि प्रकाश शाश्वती ॥१२॥



खोटे तीनों ज्ञान से, रहित जिनेश्वर ...
मिथ्या छाया न दिखे, बुद्धि प्रकाश ... ॥१२॥



कुज्ञान तिमिर पूर्ण अञ्जन ज्ञान भैषज ।
केवल दृष्टि स्वभाव च, जिन कठ शाश्वती नम ॥१३॥

अन्धे तम अज्ञान से, ज्ञानांजन सुखदाय ।
केवल दृष्टि सुभाव जिन, वाणी नमों सहाय ॥१३॥

* समुच्चय नमस्कार *

देव श्रुत गुरु वन्दे ज्ञानेन ज्ञान लंकृत ।
वक्ष्यामि श्रावगाचार, अव्रत सम्यग दृष्टित ॥१४॥

देव, शास्त्र, गुरु वन्दि हू, ज्ञान रत्न शोभन्त ।
ग्रन्थ कहू तिन अर्थ जो, अविरत सम्यकवन्त ॥१४॥

(इति नमस्कार गाथा)

*असार स्वभाव *

ससारे भय दु खानी वैराग्य येन चिन्तये ।
अनित्य, असत्य जानन्ते, अशरण दु ख भाजन ॥१५॥



यह ससार असार है, मानों भय दुख रूप।
यह वैराग्य विचारिये, जग अनित्य दुखकूप ॥१५॥



* शरीर स्वभाव *

असत्य अशाश्वत दृष्ट्वा ससारे दु ख ...
शरीर अनृत दृष्ट्वा अशुचि आ...



विनाशीक ससार में यह शरी...
अशुचि मलाशय घर बनों, ... ॥१६॥



॥ भोग-स्वभाव ॥

भोग दुःख अती दृष्ट, अनर्थं अर्थ लोपित ।
ससारे स्त्रवते जीवा, दारुण दुःख भाजन ॥१७॥

भोग महा दुखदाय हैं, - हैं अनर्थ के मूल ।
दारुण दुख देवें यही, है अनादि जग भूल ॥१७॥

॥ ससार भ्रमण का कारण ॥

अनादि भ्रमते जीवा, ससार शरण सगते ।
मिथ्या त्रतिय सम्पूर्ण, सम्यक्त्व शुद्ध लोपित ॥१८॥

भ्रमत जीव जगमें सदा, विन समकित मतिहीन ।
दर्शन मोहि निकर्म की, लेकर प्रकृति तीन ॥१८॥

॥ ससार भ्रमण का कारण ॥

मिथ्या देव गुरु धर्म, मिथ्या माया विमोहित ।
अनृत अचेत राग च, ससारे भ्रमण सदा ॥१९॥

मिथ्या माया में पगे, कुगुरु कुदेव कुधर्म ।
जडमति झूठे राग युत, भ्रमण वढावें भर्म ॥१९॥

॥ उपर्युक्त अर्थ की पुष्टि ॥

अनृत विनाशी चिंते, अशाश्वत उत्साह रत ।
अन्यानी मिथ्या सद्भाव, शुद्ध बुद्ध न चिन्तये ॥२०॥

विनाशीक मिथ्यात्व में, हो अनृत उत्साह ।
अज्ञानी जन पांये नहिं, शुद्ध बुद्धि की याह ॥२०॥

॥ मिथ्या दर्शन नान चारित्र ॥

मिथ्या दर्शन न्यान, चरण मिथ्या उच्यते ।
अनृत राग सम्पूर्णं, ससारे दु ख बीयय ॥२१॥

मिथ्या दर्शन ज्ञान यह, चारित्र मिथ्या पूर्ण ।
यही बीज जग वृक्ष के, जीव न होवे ऊर्ण ॥२१॥

॥ संसार भ्रमण के और भी कारण ॥

मिथ्या सयम हृदय चिन्त्ये, मिथ्या तप गृहण सदा ।
अनन्तानन्त समारे, भ्रमते अनादि कालय ॥२२॥

मिथ्या संयम हृदय में, मिथ्या तप में लीन ।
यह अनन्त ससार में, भटकें प्राणी दीन ॥२२॥

॥ कषायों का स्वरूप ॥



मिथ्या दृष्टी सगेन, कषाय रमते सदा।
लोभ क्रोध मय मान, गृहित अनन्त बन्धन ॥२३॥



मिथ्या दर्शन सग वश, हो कषाय में लीन्ह।
लोभ क्रोध मय मान वश, चार अनन्ता चीन्ह ॥२३॥



॥ लोभ कषाय स्वरूप ॥



लोभ कृत असत्यस्य, अशाश्वतं दृष्टित सदा।
अनृत कृत आनन्द, अधर्म ससार भाजन ॥२४॥



विनाशीक वस्तूनि को, लोभ सत्य किम होय।
लोभ जनित सुख हेय यह, जग अधर्म तज लोय ॥२४॥



॥ क्रोध कषाय स्वरूप ॥



क्रोधाग्नि प्रज्वलते जीवा, मिथ्यात्व घृत तैलय ।
क्रोधाग्नि प्रकोप कृत्वा, धम रत्न च दग्धते ॥२५॥



क्रोध अग्नि मिथ्यात्व घृत, तेल यही भडकाय ।
धर्म रत्न झोंके जिया, दुख उठाय पछताय ॥२५॥



॥ मान वा माया कषाय का स्वरूप ॥



मान अनृत राग, माया विनाशी दृष्टते ।
अशाश्वत मान वृद्धन्ते, अधर्मे नरय पत ॥२६॥



मान कषाय असत्य है, माया राग विनाश ।
मानलीन इनसे सदा, हो अधर्म गति वास ॥२६॥

॥ लोक मूढ़ता का स्वरूप ॥

जदि मिथ्या माया सम्पूर्ण, लोक मूढ रतो सदा ।
लोक मूढस्य जीवस्य, ससारे दु ख दारुण ॥२७॥

यदि मिथ्यामय भाव हों, लोक मूढ तब होय।
लोक मूढ रत जीव के, दुःख अन्त नाहिं कोय ॥२७॥

॥ देव मूढ़ता पाखन्डि मूढ़ता का स्वरूप ॥

लोक मूढ रतो येन, देव मूढ न दृष्टते ।
पाखडी मूढ सगानी, निगोय पतित पुन ॥२८॥

लोक मूढ़ रतजीव सब, देव मूढ हो जांय।
गुरु पाखडी मूढता, वश निगोद में जाय ॥२८॥

॥ पच्चीस-मल ॥

अन्यान तन मदाष्ट च, सप्रय अष्ट दूषण ।
मल सम्पूर्ण जानन्ते, सेवन दु:ख दारुण ॥२६॥

षट अनायतन आठ मद, शंकादिक वसुदोष ।
तीन मूढ पच्चीस यह, मलसमकित दुखकोष ॥२६॥

॥ मिथ्यात्व का प्रमान ॥

मिथ्या मती रतो येन, दोष अनन्तानन्तय ।
शुद्ध दृष्टी न जानन्ते, अशुद्ध शुद्ध लोपित ॥३०॥

मिथ्यामति में लीन जब, दोष अनन्तानन्त ।
शुद्ध दृष्टि नाहिं देखिये, नहीं दुःख को अन्त ॥३०॥

॥ मिथ्यात्व के त्याग का उपदेश ॥

वैराग्य भावन कृत्वा, मिथ्या तिक्त त्रिभेदय।
कषाय तिक्त चत्वारि, तिक्तते शुद्ध दृष्टित ॥३१॥

हों वैराग्य विचार तो, मिथ्या त्यागो तीन।
मिथ्यामिश्र तथा प्रकृति, चौ कषाय कर हीन ॥३१॥

॥ उक्त अर्थ की पुष्टी (७ प्रकृति नाम) ॥

मिथ्या समय मिथ्या च, समय प्रकृति मिथ्यय।
कषाय तिक्त चत्वारि, तिक्त्व शुद्ध दृष्टित ॥३२॥

प्रथम भेद मिथ्यात्व है, दूजो मिश्र स्वरूप।
सम्यक प्रकृति तथा तजो, चौं कषाय दुखरूप ॥३२॥

॥ ३ मिथ्यात ४ कषाय इन ७ प्रकृति के त्याग से लाभ ॥



सप्त प्रकृति विच्छेदो जत्र, शुद्ध दृष्टी च दृश्यते।

श्रावक अवृत जैना, संसारे दुःख पराङ्मुख ॥३३॥



सप्त प्रकृति विच्छेद जहं, शुद्ध दृष्टि दर्शंत।

श्रावक अविरत तव कहो, भव दुख दूर करंत॥३३॥



॥ सम्यक् दृष्टि का स्वभाव ॥



सम्यक् दृष्टिनो जीवा, शुद्ध तत्व प्रकाशक।

परिणाम शुद्ध सम्यक्त्व मिथ्या दृष्टि पराङ्मुख ॥३४॥



सम्यग्दृष्टी जीव के, शुद्ध तत्व में भाव।

निर्मल सम्यक दर्शसूं, मिथ्या दृष्टि पलाव ॥३४॥



॥ सम्यग् दृष्टि का कर्तव्य ॥

सम्यक् देव गुरु भक्त, सम्यग् धर्म समाचरेत् ।
सम्यग् तत्त्व च वेदन्ते, मिथ्या त्रिविधि मुक्तय ॥३५॥

देव जिनेश्वर गुरु वही, हो निर्ग्रन्थ त्रिकाल ।
दया धर्म शुभ तत्व में, भक्ति करें नतभाल ॥३५॥

॥ रत्नत्रय श्रद्धान ॥

सम्यक् दर्शन शुद्ध, न्यान आचरण मयुत ।
साधं व्रति सम्पूर्ण कुन्यान त्रिबिध मुक्तय ॥३६॥

सम्यक दर्शन शुद्ध यह, सम्यक् ज्ञान चरित्र ।
कर श्रद्धा अज्ञान तज, सम्यकवन्त पवित्र ॥३६॥

॥ तप सयम का कैसे धारण करना चाहिये ॥

सम्यक् सयम द्रष्टा, सम्यक्त्व तप सार्धय ।
परिणै प्रमाण शुद्ध, अशुद्ध सर्व तिक्तय ॥३७॥

सयम सम्यक धारिये, तप सम्यक सरधान ।
तज अशुद्धता शुद्ध हो, लीजे शिवपुर थान ॥३७॥

॥ षट्कर्म का उपदेश॥

षट कर्म सम्यक्त्व शुद्ध, सम्यक्त्व अर्थ शाश्वत ।
सम्यक्त्व ध्रुव सार्धं, सम्यक्त्व प्रति पूर्णित ॥३८॥

शुद्ध होंय षट् कर्म जब, श्रावक सम्यक्वान ।
सम्यक दर्शन सफल तव, देवै शिवसुख ज्ञान ॥३८॥

॥ षट् कर्म में प्रथम-देव पूजा ॥

सम्यक् देव उपासते, राग द्वेष विमुक्तय ।
अरूप शाश्वत शुद्ध, सुख आनन्द रूपय ॥३६॥

सम्यक देव पिछानिये, राग दोष करि हीन।
निराकार शाश्वत प्रभू, हो अनादि निजलीन ॥३६॥

॥ देव कैसा हो ॥

देव देवाधि देव च, नंत चतुष्टय संजुत ।
ऊनकार च वेदन्ते, तिष्टत शाश्वत धुव ॥४०॥

देव चतुष्टय वन्त हो, इन्द्र करें सो सेव।
ओंकार मे जानिये, अविनाशी जिनदेव ॥४०॥

॥ देव वन्दना ॥

ऊरकार च ऊर्ध्वं च, ऊर्ध्वं सद्भाव तिष्ठते।
ऊव ह्रिय श्रिय वदे, त्रिविधि अर्थ च सजुत ॥४१॥

ऊर्द्ध लोक शिवपुर बसे, परम सिद्ध भगवान।
वन्दू ओंपद ह्रीं तथा, श्रीम् अर्थ मय ज्ञान ॥४१॥

॥ सनह का स्वरूप ॥

देव च न्यान रूपेण, परमेष्टी च सजुव।
सोऽह देह मध्येषु, जो जानाति स पंडिता ॥४२॥

देव ज्ञान रूपी विमल, परमेष्ठी पद युक्त।
सोह देह सुमध्य में, जाने पंडित युक्त ॥४२॥

॥ सिद्ध भगवान कहा हैं ॥

कम अष्ट विनिर्मुक्त, मुक्ति स्थानेषु तिष्टते ।
सोऽहं देह मध्येषु, जो जानाति स पंडित। ॥४३॥

कर्माष्टक निर्मुक्त हैं, मुक्त स्थान रमन्त।
सोह देह सुमध्य में, जाने पंडित सन्त ॥४३॥

॥ उक्त अर्थ की पुष्टी ॥

परमानन्द सदृष्टा, मुक्ति स्थानेषु तिष्टते।
सोऽहं देह मध्येषु, सर्वज्ञ शाश्वत पद ॥४४॥

परमानन्द सुदृष्टि मय, मुक्ति स्थान वसत।
सोह देह सुमध्य में, शाश्वत ज्ञान रमन्त ॥४४॥

॥ देह में विराजमान शुद्धात्मा ॥



दर्शण न्यान सजुक्त, चरण वीर्य अनन्तय ।

अमूर्त न्यान सशुद्ध, देव देवालय तिष्ठ ॥४५॥



दर्शन ज्ञान सयुक्त यह, चरणवीर्य मय आप।

निराकार है देव शुभ, देह दिवालय माप॥४५॥



॥ अरहत - सिद्ध ॥



अरहत देव तिष्टन्ते, ह्रियकारेण तिष्टते ।

शाश्वत ऊर्ध्व सद्भाव निरवाण शाश्वत पद ॥४६॥



श्री अरहत महत को, ह्रींकार में ध्यान।

ओंकार में सिद्धपद, जपो जाप मतिमान॥४६॥



॥ आत्मा के तीन भेद ॥

आत्मा त्रिविधि प्रोक्त च, पर अतर वहि रप्पय ।
परनाम जत्र तिष्टते, तस्याति गुण सजुत ॥४६॥

परमातम अन्तर तथा, वहिरातम यह तनि ।
भेद कहें हैं जीव के, निज २ गुण करिलीन ॥४७॥

॥ परमात्मा - स्वरूप ॥

आत्मा परमात्म तुल्य च, निकल्प चित्त न क्रीयते ।
शुद्ध भाव थिरी भूत्वा, आत्मन परमात्मन ॥४८॥

परमातम के तुल्य हैं, यह आतम गुण लीन्ह ।
चित्तविकल्प न कीजिये, शुद्धभाव को चीन्ह ॥४८॥

॥ अन्तरात्मा का स्वरूप ॥

विन्याण और जानन्ते, अप्पा पर परीचये।
परिचये अप्प सद्भाव, अंतर आतम परीचये ॥४६॥

भेद ज्ञान मंडित परम, निज परकी पहिचान।
सो अंतर आतम सुधी, शिवमारग में ध्यान॥४६॥

॥ बहिरात्मा का स्वरूप ॥

बहिरप्प पुद्गल दृष्ट्वा, रचन अनंत भावना।
परपंच येन तिष्टन्ते, बहिरप्प संसार स्थित ॥५०॥

पर पुद्गल तन आदि के, हो प्रपंच में दक्ष।
बहिरातम सो जानिये, दुख पावे परतक्ष ॥५०॥

॥ देव को नमस्कार ॥

बहिरप्प प्रपच अर्थेच, तिक्कते जे विचक्षणा।
अप्पा परमप्पय तुल्य, देव देव नमस्कृत्य ॥५१॥

बहिरातम पद दूर कर, अंतर आतम चीन।
परमातम पद में रमें, नमहिं देव गुणलीन॥५१॥

॥ कुदेव का स्वरूप ॥

कुदेव प्रोक्त जना, [illegible] युत ॥
कुन्यान व्रति सम्पूर्ण, [illegible] ॥५२॥

रागद्वेष दोषादि युत, कुज्ञानी [illegible]।
आडम्बर धारें सभी, ते कुदेव [illegible] ॥५२॥

॥ कुदेव का स्वरूप ॥

माया मोह ममतस्य, असुह भाव रतो सदा।
तत्र देव न जानन्ते, जत्र रागादि संजुत ॥५३॥

माया मोह ममत्व मय, अशुभ भाव रत देव।
देव नहीं वह जानिये, जहा राग की टेव ॥५३॥

॥ कुदेव ॥

आरति रौद्र च सद्धान, माया क्रोध च संजुत।
करम ना असुह भावस्य, कुदेव अनृत पर ॥५४॥

आर्त रौद्र दो ध्यानमय, माया क्रोध संजुत्त।
कर्म अशुभ नित करत हैं, जानों देव कुयुक्त॥५४॥

॥ कुदेवो-पासना फल ।

अणत दोष सजुक्त, शुद्ध भाव न दिष्टते ।
कुदेव रौद्र आरूढ, आराध्य नरय पत्त ॥५५॥

दोष अनता सजुक्त गत, शुद्ध भाव नहिं देख ।
रौद्र ध्यान मय देव भज, लें पद नरक विशेख ॥५५॥

॥ कुदेवोपासक की दुर्गती ॥

कुदेव जेन पूजन्ते, वदना भक्ति तत्परा ।
ते नरा दुःख साहते, ससारे दुःख भीरुं ॥५६॥

देव कुदेवन की करें, जे नर भक्ति विशेष ।
ते दुख सहते जगत मे, बाधे कर्म विशेष ॥५६॥

॥ कुतीर्थ वन्दना फल ॥



कुदेव ये हि मानन्ते, स्थान जीर आपते।
ते नरा भय भीतस्य, समारे दुःख दारुण ॥५७॥



जो कुदेव को मानते, जावें तीर्थ कुतीर्थ।
ते नर भय सयुक्त हो, भटकें हो अपकीर्ति ॥५७॥



॥ कुदेव वदना का फल ॥



मिथ्या देव च प्रोक्त च, न्यान कुज्ञान दृष्टते।
दुर्बुद्धि मुक्ति मार्गस्य, निरास नरय पत ॥५८॥



कहे देव मिथ्यामती, कुज्ञानी मति हीन।
मुक्ति मार्ग जाने नहीं, विरथा से गति हीन ॥५८॥



॥ कुदेव विश्वास का फल ॥

जस्य देव न उपासते, क्षीयते लोक मूढय ।
जत्र देव च भक्त च, विश्वास दुर्गति भाज ।५९॥

लोक मूढता वश फंसे, अज्ञानी के जाल।
कर विश्वास पधारि हे, दुरगति में बेहाल॥५६॥

॥ अदेव का स्वरूप ॥

अदेव देव प्रोक्त च, अध अधेन दृष्टते।
मार्ग किं प्रवेश च, अध कूप पतन्तिय ६ ।

कह अदेव को देव सव, अज्ञानी अंधेय।
मार्ग न सूझे अध को, पड़ें कूप मे तेय॥६०॥

॥ अदेव का फल ॥



अदेव जेन दिष्टन्ते, मानते मूढ सगते ।
ते नरा तीव्र दु खानि, नरय तिर्यंच पत ॥६१॥



जो अदेव को देखते, मूढ सगती मान ।
तीव्र दुःख पावें कुधी, नरक पशू गति जान॥६१॥



॥ अदेव का वास्तविक स्वरूप ॥



अनादि काल भ्रमन च, अदेव देव उच्यते ।
अनृत अचेत दिष्टन्ते, दुर्गति गमन च सयुत ॥६२ ॥



भटके काल अनादि यह, मानें देव अदेव ।
झूठे जड अज्ञान मय, दुर्गति भ्रमण करेव॥६२॥



॥ अदेव वन्दन का फल ॥

अनृत असत्य मान च, विनाश जत्र प्रवर्तते ।
ते नरा थावर दु ख, इन्द्रियादि भाजन ॥६३॥

जह अदेव को मान तंह, भव भव नाश विनाश ।
एकेंद्रिय थावर गति, दुख भाजन भव वास ॥६३॥

॥ अदेव वन्दन फल ॥

मिथ्या देव अदेव च, मिथ्या दृष्टी च मानते ।
मिथ्यात मूढ दृष्टी च, पतत ससार भाजन ॥ ४॥

मिथ्या दृष्टि मूढ जन, माने देव अदेव ।
पतन करें संसार में, दुख भाजन स्वयमेव ॥६४॥

॥ षट्कर्म में दूसरी गुरु उपासना ॥

सम्यक् गुरु उत्पादन्ते, सम्यक्त्व शाश्वत ध्रुव ।
लोकालोक च तत्त्वार्थं, लोकित लोक लोकित ॥६५॥



श्रीगुरु सम्यकवन्त हों, करें तत्व उपदेश।
लोकालोक प्रकाशते, धर निर्ग्रंथ सुभेष॥६५॥

॥ गुरु का स्वरूप ॥

ऊर्ध्वं अधो मध्य च, न्यान दृष्टी समाचरेत् ।
शुद्ध तत्त्व स्थिरी भूत्व, न्यानेन न्यान लक्षत ॥६६॥

ज्ञान दृष्टि से तीन ही, लोक स्वरूप विचार।
शुद्ध तत्व जाने गुरु, ज्ञान दृष्टि व्यवहार॥६६॥

॥ गुरु का स्वरूप ॥

शुद्ध धर्म च सद्धान, शुद्ध तत्व प्रकाशक ।
शुद्धात्मा चेतना रूप, रत्नत्रय लङ्कृत ॥६७॥

रत्नत्रय से शोभते, शुद्ध तत्व में लीन ।
शुद्ध अर्थ चैतन्य को, दें उपदेश प्रवीन ॥६७॥

॥ गुरु का स्वरूप ॥

न्यानेन न्यान मालव्य, कुन्यान त्रिविनिमुक्तय ।
मिथ्या माया न दृष्टते, सम्यक्त्व शुद्ध दृष्टित ॥६८॥

आलम्बन है ज्ञान को, विनिर्मुक्त कुज्ञान ।
मिथ्या मय नाहिं जानिये, सम्यक्वन्त महान ॥६८॥

॥ गुरु की सामर्थ ॥

ससारे तारण चिन्ते, भव्य लोकैक तारक ।
धरम अप्प सद्भाव, प्रोक्त च जिन उक्तय ॥६९॥

भव्यनि को तारे वही, श्रीगुरु तारण हार ।
धर्म रूप गुरु मानिये, कहें जिनेश्वर सार ॥६९॥

॥ गुरु के ज्ञान का महत्व ॥

न्यान त्रितिय उत्पन्न, ऋजु विपुल च दिष्टते ।
मन परजय च चत्वारी, केवल शुद्ध साधक ॥७०॥

तीन ज्ञान उत्पन्न हों, चौथे की अभिलाष ।
पंचम केवल ज्ञान की, करें साधनाभ्यास ॥७०॥

॥ सच्चे गुरु के कर्तव्य ॥



रत्नत्रय सुभाव च, रूपातीत ध्यान संयुत।
शक्तस्य व्यक्त रूपेन केवल पदम ध्रुव ॥७१॥



रत्नत्रय शुभ भाव मय, ध्यान स्वरूपा तीत।
शक्ति व्यक्त चिद्रूप की, यह केवल पदरीत ॥७१॥



॥ सम्यग्दृष्टि गुरु ॥



परम त्रि विनिर्मुक्त च, व्रत तप नेम संयुत।
शुद्ध तत्त्व च आराध्य, दृष्ट सम्यक दर्शन ॥७२॥



द्रव्य भाव नों कर्म से, रहित तपस्वी राज।
सम्यग्दृष्टि स्वभाव मय, व्रत तप संयम साज ॥७२॥



कुगुरु का स्वरूप ॥

कुगुरुस्य गुरु प्रोक्त च, मिथ्या रागादि सजुत ।
कुन्यान प्रोक्त लोके, कुलिंगी असुह मावना ॥७५॥

मिथ्या राग सयुक्त जो, कुज्ञानी जग मांय ।
वही कुलिंगी मानिये, तिन पूजें दुखपांय ॥७५॥

॥ कुगुरु का स्वरूप ॥

कुगुरु राग सम्बन्ध, मिथ्या दृष्टी च दृष्टते ।
राग द्वेष मय मिथ्या, इन्द्रियादि सेवन ॥७६॥

रागद्वेष मिथ्यात मय, रागी हृदय मलीन ।
कुगुरु दुखदाई यहा, भव २ में मतिहीन ॥७६॥

॥ मिथ्याती कुगुरु ॥

मिथ्या समय मिथ्या च, प्रकृति मिथ्या प्रकाशये।
शुद्ध दृष्टि न जानन्ते, कुगुरु सग विनर्जये॥७७॥

मिथ्या मिश्र सम्यक प्रकृति, तीनों में लवलीन।
कुगुरु वही मिथ्यात मय, है अज्ञानी दीन॥७७॥

॥ कुशीली कुगुरु ॥

कुगुरु कुज्ञान प्रोक्त, शल्य त्रिति [illegible]
कषाय वर्धन नित्य, लोक मूढ़ [illegible]॥७८॥

शल्य रहित त्रै योग से, लोक मूढ़ [illegible]।
कुगुरु कषायें चार कर, करें [illegible]॥७८॥

॥ कामी कुगुरु ॥

इन्द्रियाना मनोनाथा, प्रसरत प्रवर्तते ।
विषय विषम दिष्ट च, ममत मिथ्या मूतय ॥७६॥

काम भाव मनमें सदा, कुगुरुन के प्रज्ञुलन्त ।
विषयी आठों मदसहित, भव २ में भटकन्त ॥७६॥

॥ ससारी कुगुरु ॥

अनृत उत्साह कृत्वा, अमा[illegible] अशुभ [illegible]र ।
माया अनृत असत्यस्या, कुगुरु [illegible] भाव[illegible] ॥८०॥

उत्साही संसार में, भाव अशुभ [illegible] रूप ।
कुगुरु भ्रमें संसार में, स्वपर दु:ख के कूप ॥८०॥

॥ कुगुरु ॥

आलाप असुह वाक्य,　आरति रौद्र सजुत ।
क्रोध लोभ अनन्तान,　कुलिंगी कुगुरु भवेत् ॥८१॥

आर्त रौद्र मय वचन सू,　क्रोध लोभ झलकांय ।
कुगुरु कुलिंगी जानिये, भव भव दुर्गति पाय ॥८१॥

॥ कुगुरु पारधी ॥

कुगुरु पारधी सदृश,　ससारे वन आश्रय ।
लोक मूढस्य जीवस्य,　अधरम पाश बंधन ॥८२॥

कुगुरु पारधी जगत वन,　पाशवन्ध अधर्म ।
लोक मूढ जग जीव ये,　फसे तहां यह कर्म ॥८२॥

॥ शिकारी कुगुरु ॥

आडरते वन जीवा, जाल पारधी कर ।
मिथ्यास अह यन्दे, लोकमूढस्य मोहित ॥८३॥

जग वनके सब जीव तिन, फसे जाल में आय ।
डारें नरक निगोद में, लोक मूढ फलपाय ॥८३॥

॥ कुगुरु का मापान ॥

कुगुरु अधर्म पश्यतो, अदे[illegible] [illegible] करी ।
विकहा राग डड जाल, पाश [illegible] [illegible] ॥८४॥

देखें कुगुरु अधर्म को ले [illegible] [illegible]धार ।
विकथा जाल बिछायके, फासी देवें [illegible]र ॥८४॥

॥ अगुरु ॥

यन जीव गण रुदन, अह यन्ेत जन्मय ।
अगुरु लोक मूढस्या, भदत जनम जन्मय ॥८५॥

जग वनके यह जीव गण, रुदन करें बिललाय ।
अगुरु कुगुरु के जाल पडि, जन्म २ दुखपाय ॥८५॥

॥ अगुरु ॥

कुगुरु अस्य गुरू माने, मूढ दीष्ट च दिष्ते ।
ते नरा नरप जाती शुद्ध दिष्टी कदाचन् ॥८६॥

अगुरुन को गुरु मानके, मूढ भाक्ति भिप्यात ।
नरक पडें ते नर कुधी, भव २ की यह पात ॥८६॥

॥ अगुरु ॥

अनृत अचेत प्रोक्तं, जिन द्रोही वचन लोपितं ।
विश्वास मूढ जीवस्य, निगोय जायते ध्रुव ॥८७॥

जड असत्य मय वचन जिन, द्रोही कहतय मूढ़ ।
तिन विश्वासी जीव को, हो निगोद यह गूढ़ ॥८७॥

॥ मिथ्याती गुरु ॥

दर्शन भ्रष्ट गुरुश्चैव, अदर्शन प्रोक्त सदा ।
मानते मिथ्या दृष्टी च, सम्यग्दृष्टि न मानते ॥८८॥

दर्शन भ्रष्टगुरु वही रहें कुदर्शन लीन ।
सम्यग्दृष्टी मानें नहीं, मिथ्या दृष्टी चीन ॥८८॥

॥ कुगुरु मानने का निषेध ॥



कुगुरु सगते जेना, मानते भय लाजय ।
आशा स्नेह लोभ च, मानते दुर्गति भानन ॥८९॥



भव लज्जा आशादि वश, मानो कुगुरु न कोय ।
मानो तो दुर्गति लहो, जिनवर एम कहोय॥८६॥



॥ कुगुरु का वचन ॥



कुगुरु प्रोक्त जना, वचन तस्य विश्वासन ।
निश्वास जेन कर्त्तव्य, ते नरा दुख भाजन ॥९०॥



कुगुरु वचन मानों मती, कुगुरु वचन है जाल ।
दुखभाजन बनजाय जिय, वढे जगत जजाल ॥९०॥



॥ कुगुरु का उपदेश ॥



कुगुरु ग्रंथ संजुक्त, कुधर्मं प्रोक्त सदा।
असत्य सहितो हिंसा, उत्साह तस्य कीयते ॥९१॥



हिंसा सहित असत्य वच, कुगुरू अधर्म विशेष।
मिथ्या उत्साही वढे, देख डरो तिन भेष ॥९१॥



॥ कुगुरु का उपदेश ॥



ते धरम कुमति मिथ्यात, अन्यान [illegible] [illegible]।
आराध्य जेन केनापि, संसार [illegible] कारण ॥९२॥



कुगुरु बताये मार्ग को, कुमति [illegible] हीन।
मत आराधन तुम करो, यह दुख-कारण चीन ॥९२॥



॥ कुगुरु उपदेश ॥



अधर्मं धर्मं मप्रोक्त, अन्यान न्यान उच्यते ।
अचेत अशाश्वत मद, अधर्मं दुःख भाजन ॥९३॥



कह अधर्म को धर्म वह, अज्ञानी को ज्ञान।
जड अशाश्वते देव में, धर्म कहें दुखखान ॥९३॥



॥ कुगुरु उपदेश ॥



कुगुरु अधम प्रोक्त च कुलिंगी अधर्म सचत ।
मानते अभन्य जीवस्य, ससारे दु.ख कारण । ९४॥



कुगुरु कुलिंगी नरनिको, जो अधर्म में लीन।
नर अभन्य ही मानते, वही दुखी पद लीन ॥९४॥



॥ अधर्म निरूपण ॥

अधर्म लक्षणश्चैव, अनृत असत्य श्रुतं।
उत्साह सहितो हिंसा, हिंसानन्दी जिनागम ॥९५॥

अबमें लिखूं अधर्म को, कछु सरूप इहियान।
है अधर्म जड ज्ञानमय, हिंसा मय पहिचान ॥९५॥

॥ रौद्र ध्यान के ४ भेद ॥

हिंसानन्दी अनृतानन्दी, स्तेयानन्दी [illegible]य।
रौद्र ध्यान च सम्पूर्ण, अधर्म दु[illegible] [illegible] ॥९६॥

हिंसा चोरी झूठ अरु, विषया नन्दी ध्यान।
यही रौद्रपरिणाम है, यह अधर्म दुखखान ॥९६॥

॥ अधर्म ॥

आरति रौद्र सजुक्त, धर्म अधर्म सजुत।
रागादि मिश्र सम्पूर्ण, अधर्म ससार भाजन ॥९७॥

आर्तरौद्र सयुक्त जे, धर्म हीन परिणाम।
रागद्वेप परिणाम युत, यह अधर्म दुखखान॥९७॥

॥ विकथा ॥

विकहा राग सम्बन्ध, विषय कषाय सदा।
अनृत राग आनन्द, वे धर्माधर्म उच्यते ॥९८॥

विकथा को संबध है, राग विषय अनुराग।
यह अनित्य सुखत्याग अब, धर्मपंथ में लाग॥९८॥

॥ विकथा ॥



विरहा प्रमान असुह च, नन्दिश असुह भावना ।
ममत काम रूपेना कथित बरन विशेषित ॥९९॥



विकथा बोलन हार नर, अशुभ भावना भाय ।
काम रूप मोही जिया, भव २ दुर्गति पाय ॥९९॥



॥ स्त्री कथा ॥



स्त्रिय राप रूपण कथित वरण विशेषित ।
ते नरा नरय जाता, धर्म रत्न विरोपित ॥१००॥



काम रूपनारी कहीं, धर्म रत्न की चोर ।
जे ताकी कथनी करें, ते पावे दुखघोर ॥१००॥



॥ राज कथा ॥

राज्य राग उत्पाद्ते, ममता गारवस्थित।
रौद्र ध्यान च आराध्य, राज्य चरण विशपित ॥१०१॥

गौरव मद ममता सहित, राग रौद्र के भाव।
राज्य कथा यह त्यागिये, विकथा भाव कुभाव ॥१०१॥

॥ विकथा ॥

हिंसानन्दी च राज्य च, अनतानन्दी अशाश्वत।
कथित अशुह भावस्य, ससार भ्रमण सदा ॥१०२॥

हिंसा नन्दी भाव मय, यह विकथा हैं चार।
अशुभ भाव ससार में, भ्रमण करावें भार ॥१०२॥

॥ विकथा-प्रभाव ॥



भयस्य भय भीतस्य, अनृत दुःख भाजनं।
भाव विकल्पत जाती, ते धरम रत्न न दिष्टते ॥१०३॥



भय अनृत विकलप घने, धर्म भाव नाहिं सूझ।
दुखदाई विकथा तजो, तब करमनि सौं जूझ॥१०३॥



॥ चोर कथा ॥



चोरी उत्पादितं भाव, अनर्थ सो सगीयते।
असुह परिणाम तिष्टन्ते, धरम भाव न दिष्टते ॥१०४॥



है अनर्थ को मूल यह, चोर भाव दुखरूप।
धर्म भावना त्यागकर, चोर सहें दुख खूब॥१०४॥



॥ चोर कथा ॥

चौरस्य भावना रता, आरति रौद्र [illegible]
स्तेयानन्द आनन्द संसारे दुःख [illegible]

आर्त रौद्र मय भावना, चोरनि की [illegible]
चौर्यानन्दी ध्यान सू, दुख दारुण [illegible]

॥ चोर कथा ॥

चोरी कृत धृत धारी च, जिन वच [illegible]
अशास्वत अनृत प्रोक्त, धर्म रत्न [illegible]

चोर न माने जिन वचन, अनृत [illegible]।
धर्म रत्न लोपे कुधी, जन्म जन्म [illegible]॥१०६॥

॥ समुच्चय निकथा कथन ॥



विकहा अ नर्म मूलस्य,　व्यसन अधर्म संचित ।

जे नरा भावति दृष्ट,　दु ख दारुण पुन पुन ॥१०७॥



है अधर्म की मूल यह, विकथा वचन कहन्त ।

जे नर तिनमें रत्त हैं, भवर दु:ख महंत ॥१०७॥



॥ सप्तव्यसन निरूपण (जुआ निषेध) ॥



जुआ अशुद्ध भावस्य,　जोयत अनृत कृत ।

परणे आरत संजुक्त　जुआ नरय भाजन ॥१०८॥



जूवा खेलन में महा, अशुभ रूप परिणाम ।

आर्तध्यान में लीननित, पाय नरक दुख थान ॥१०८॥



॥ मास निषेध ॥

मास रौद्र ध्यानस्य, म मूछन जत्र विद्यते ।
जल क^ मूलस्य, शाक सन्मूर्छन तथा ॥१०९॥

मांस रौद्र मन करत है, सन्मूर्छन को घात ।
कदमूल शाकादि वहु, अतीचार तज भ्रात ॥१०९॥

॥ स्वाद चलित वस्तु ॥

स्वाद विचलते जेना, सन्मूर्छन तस्य उच्यते ।
ते नरा तस्य भुक्त च, तिर्यंच नरय पद ॥११०॥

विचलित स्वाद जहां भयो, समूर्छन तह होय ।
जे नर ऐसी वस्तु को, सा पशु नारक होय ॥११०॥

॥ द्विदलादि त्यागो ॥

मिदल मधान वधान, अनुराग जस्य गीयते ।
मनस्य मानन कृत्वा, माम तस्य उन्यते ॥१११॥

द्विदल भेद लख शास्त्र में, त्यागो सब संधान।
इनमें राग न कीजिये, मांस दोष को थान ॥१११॥

॥ बिना फोड़ा फल न खाना ॥

फल सम्पूर्ण भुक्त च, सम्मूर्छन वस्य निभ्रम ।
जीवस्य उत्पन्न दृष्ट्रा, हिंसानन्दी मांस दूषण ॥११२॥

सड़गो या पूरो कभी, फल खावो नहिं जोग।
त्रस हिंसा को दोष है, मांस दोष सम भोग ॥११२॥

॥ मद्यत्याग ॥

मद्य ममत्व भावेन, जे आरूढ चिन्तन।
माषा शुद्ध न जानन्ते, मद्य सस्य विमोचन ॥११३॥

वचन शुद्ध तिनके नहीं, जिनके मदिरा पान।
मद्य त्याग कीजे सुधी, कर निजपद पहिचान॥११३॥

॥ मद्यत्याग ॥

अनृत स्तेय माव च, कारज कारजे न सूच्यते।
वे नरा मद्य पीवती, ससारे भ्रमण सदा ॥११४॥

काज अकाज न सूझे सत्य भाव नहिं होय।
भ्रमण सदा ससार में, मदिरा जन्म डुबोय॥११४॥

॥ मद्यत्याग ॥

जिन उक्त न श्रद्दन्ते, मिथ्या रागादि भावना।
अनृत रत जानन्ते, ममत मान भूतये ॥११५॥

ते जिन वचन न सरदहें, मिथ्या रागी भाव।
ममता मद भूले तिने, मिले न सुख की थाव॥११५॥

॥ मद्यत्याग ॥

शुद्ध तत्त्व न वदन्ते, अशुद्ध शुद्ध गीयते।
मद्य ममत्त भावस्य, मद्य दोष तथा वुधै ॥११६॥

शुद्ध तत्व न अनुभवे, कर अधर्म से प्रेम।
मदिरा जिनके ध्यानमें, तजें धर्म व्रत नेम॥११६॥

॥ मद्यत्याग ॥

जिन उक्त शुद्ध तत्त्वार्थं, जैन सार्धं अव्रत व्रत ।
अन्यानी मिथ्या ममतस्य, मद्य आरूढते सदा ॥११७॥

अव्रत व्रत जाने नहीं, मिथ्या ज्ञान प्रभाव ।
मद्यपान कर हो रहे, वे सुध धरें कुभाव ॥११७॥

॥ वेश्या व्यसन त्याग ॥

वेश्या आसक्त आरक्त, कुन्याण रमते सदा ।
नरय जस्य सद्भाव, ते भाव वेश्या दृष्टित ॥११८॥

वेश्या में आशक्त मन, कुज्ञानी को होय ।
नरक जाय दुखपाय बहु, त्यागो सज्जन लोय ॥११८॥

॥ शिकार क्रीडा त्याग ॥



पारधी दुष्ट सद्भाव, रौद्र ध्यान च संयुत ।
आरति अरक्त जेना, ते पारधी च संयुत ॥११९॥



ते नर खोटे पारधी, खेलो करें शिकार ।
आर्त रौद्र ध्यानी महा, भ्रमण करें संसार ॥११९॥



॥ शिकार त्याग ॥



मानवे दुष्ट सद्भाव, वचन दुष्ट रतो सदा ।
चिंतना दुष्ट आनन्द, ते पारधी हिंसानन्दित ॥१२०॥



हिंसा नंदी पारधी, वचन दुष्ट मन दुष्ट ।
चिंता दुष्ट सदा रहे, होय दु:ख तसु पुष्ट ॥१२०॥



॥ शिकारी का स्वभाव ॥

विश्वास पारधी दुष्टा, मन कूट वचन कूटम ।
कर्मना कूट करतव्या, विश्वास पारधी सजुत ॥१२१॥

मन वच काया तीन ये, रहें क्रूर नित तास।
जे नर करें शिकार नित, तिनहिं नरक पदवास॥१२१॥

॥ शिकारी का स्वभाव ॥

जे जीव पथ लागते, कुपथ जेन दुष्टते ।
विश्वासी दुष्ट सगानी, ते पारधी दु"ख दारुण ॥१२२॥

स्वपर पंथ को भ्रष्ट कर, करें दुष्ट को सग ।
ते दुख दारुण भोगि हैं, हिंसक नरक प्रसग॥१२२॥

॥ कुगुरु भी शिकारी है ॥

ससार पारधी विश्वास, जनम मृत्यु प्राप्तये ।
ते जीव अधर्म विश्वास, ते पारधी जनम जन्मय ॥१२३॥

जे अधर्म विश्वास कर, जन्म मरण जजाल।
परे जीव ते पारधी, कुगुरु करैं वेहाल ॥१२३॥

॥ अज्ञानी की मति ॥

मुक्ति पथ तत्त्व साधं च, लोकालोक न लोकित।
पथ भ्रष्ट अचेतस्य, विश्वास जनम जन्मय ॥१२४॥

मुक्ति पथ श्रद्धान तज, पंथ भ्रष्ट जड़ जीव।
कुगुरु वचन विश्वास ते, जन्म २ भटकीव ॥१२४॥

॥ अज्ञानी पारधी की गति ॥

पारधी पाश जन्मस्य, अधर्म पाश अन्ततय ।
जनम जनम दुष्ट च, प्राप्त दुःख दारुण ॥१२५॥

फंस अधर्म के फांस में जन्म जन्म दुखपांय ।
दुष्ट पारधी जीव वहु, जगमें भ्रमण करांय ॥१२५॥

॥ जिनलिंगी - कुलिंगी ॥

जिन लिंगी तत्त्व वेदन्ते, शुद्ध तत्त्व प्रकाशक ।
कुलिंगी तत्त्व लोपन्ते, शुद्ध तत्त्व प्रकाशक ॥१२६॥

जिन लिंगी जिन तत्वको, माने करें प्रकाश ।
यह कुलिंग धारी करें, तत्व लोप शुभनाश ॥१२६॥

॥ कुलिंगी ॥

ते लिंगी मूढ दृष्टी च, कुलिंगी विश्वास कृत।
दुर्बुद्धि पाश बद्धन्ते, संसरे दु:ख दारुण ॥१२७॥

तिन कुलिंग धारीन को, मूढ करें विश्वास।
फस कुबुद्धि के जाल में, भरे दुःख प्रति श्वांस॥१२७॥

॥ सम्यकदृष्टी ॥

पारधी पाश मुक्तस्य, जिन उक्त सार्धं ध्रुव।
शुद्ध तत्व च सार्धं च, अप्प सद्भाव चीन्हत ॥१२८॥

शुद्ध तत्व श्रद्धान जिन, निज स्वभाव पहिचान।
ते छूटे उन जालतें, हृदय धार जिनवान॥१२८॥

॥ चोरी व्यसन ॥

स्तेयं अनर्थं मूलस्य, विटम्ब असुद्द उच्यते ।
ससारे दु ख सद्भाव, स्तेय दु ख भाजन ॥१०९॥

यह अनर्थ को मूल है, चोरी दुष्ट स्वभाव ।
वही दु ख के पात्र हैं, जो धारें यह भाव ॥१२९॥

॥ चोरी ॥

मनस्य चिन्तन कृत्वा, अस्तेय दुर्गति भाजन ।
कृत अशुद्ध कर्मस्य, दृट सद्भाव वरतो सदा ॥१३०॥

दुखदाई चोरी यहै, करें क्रूर मन भाव ।
क्रूर कर्म तिनसों बने, जे नर चोर स्वभाव ॥१३०॥

॥ चोरी स्वरूप ॥

स्तेय अदत्त विना, वचन अशुद्ध सदा ।
हीन छल कूट आरम्भ स्तेय दुर्गति कारण ॥१३१॥

विना दिये वस्तूनि को, लेनां चोरी होय ।
हीन वचन मन क्रूरजन, दुर्गति कारण जोय ॥१३१॥

॥ धर्म तत्व की चोरी ॥

स्तेय दु ख प्रोक्त च, जिन वचन विलोपित ।
अर्थ अनर्थ उत्पाद्न्ते, स्तेया व्रत खडन ॥१३२॥

जिन आज्ञा लोपे कुधी, व्रत खडन कर देय ।
कर अनर्थ जिनधर्म को, जो सो चोर कहेय ॥१३२॥

॥ धर्म चोर ॥

सर्वन्य मुख वाणी च, शुद्ध तत्त [illegible]
जिन उक्त लोपन कृत्वा, स्तेया [illegible]

जिनवाणी सर्वज्ञ की, शुद्ध तत्त के [illegible]
लोपे सोही चोर है, निश्चय [illegible]।

॥ आत्मतत्व को भूलना [illegible]

दर्शन न्यान चारित्र, अमूर्ति [illegible]
शुद्धात्मा तत्त लोपते, स्तेय [illegible]

दर्शन ज्ञान चरित्र मय, शुद्धा[illegible] भूल।
पर स्वरूप में मगन जो, वही [illegible]मूल ॥

॥ परस्त्री व्यसनत्याग ॥

परदारा रता भाव, प्रपचस्य कृत सदा ।
ममस्य अशुद्ध भावस्य, आलाप कूट उच्यते ॥१३५॥

परदारा रत भाव जंह, तंह प्रपंच नित होय ।
भापा मनके भाव तह, सवही थिरता खोय ॥१३५॥

॥ व्यभिचारी की दशा ॥

अनम्भ कूट सद्भाव, मन वचनस्य क्रीवते ।
ते नरा व्रत हीनस्य, ससारे दुःख दारुण ॥१३६॥

जहां भाव अब्रह्म के, तह त्रियोग हो क्रूर।
जग में दारुण दुख वही, पावे व्रत कर दूर ॥१३६॥

॥ व्यभिचारी विकथा करता है ॥



कषाय जेन विकहस्या, चक्र इन्द्र नराधिप ।
भावना तत्र तिष्टन्ते, परदारा रतो सदा ॥१३७॥



चक्र,इंद्र, नृपतीन की, विकथा वांछक जोय।
परदारा रत भावना, करे यही नित सोय ॥१३७॥



॥ व्यभिचारी दुखी होवे ॥



काम कथा च वरणत्वं, वचन आलाप रजन ।
ते नरा दुःख सहन्ते, परदारा रतो सदा ॥१३८॥



काम कथा नित करत यह, जो कदर्प स्वभाव।
दुःख सहे नित जगत में, परदारा रत भाव ॥१३८॥



॥ व्यभिचारी की परणति ॥

निरुद्दा असुह ओरंके च, नापार्थे श्रुव उत्पते ।
श्रुत अन्यान मय मूढा, व्रत खंड दारा रजत ॥१३९॥

मन रंजन दारानि में, करत सदा अज्ञान ।
व्रत विहीन विकथा कहे, सुनें दुःखकी खान ॥१३९॥

॥ व्यभिचारी की दशा ॥

परणाम तस्य विचलन्ते, विभ्रम रूप चिन्तन ।
आलाप श्रुत आनन्द, विकहा परदार सेवन ॥१४०॥

विचलित हो परिणाम तस, विभ्रम चिन्तै रूप ।
जो परदारा रत सदा, गति विचित्र दुखरूप॥१४०॥

॥ व्यभिचारी के भाव ॥

मनादि काय निचलन्ति, इन्द्रिय विषय रजत ।
व्रत खंड सर्व धर्मस्य, अनृत अचेत सार्धय ॥१४१॥

जड़ता, अनृत वचन मय, धर्म हीन व्रत हीन ।
मनरजन इंद्रिय विषय, चचल होवे दीन ॥१४१॥

॥ व्यभिचारी के आठ मद ॥

विषय रजत जेना, अनृतानन्द सजुत ।
पुण्य सद्भाव उत्पादतो, दोष आनन्द कृत ॥१४२॥

विकथा मन को रमत है, मृषा नन्द अज्ञान ।
दोष आठ मद और तह, हो उत्पन्न महान ॥१४२॥

॥ अष्ट मद निरूपण ॥

एतत राग बधस्य, मदाष्ट रमते सदा ।
ममत असत्य आनदं, मदाष्ट नरय पत ॥१४३॥

उक्त राग मय जीव बहु, आठों मद में चूर ।
नरक जाय अज्ञान से, रहे धर्म से दूर ॥१४३॥

॥ मद निरूपण ॥

असत्य अशास्वत राग, उत्साह परपच रतो सदा ।
शरीर राग वृद्धन्ते, ते पुनः दुर्गति भाजन ॥१४४॥

यही दुरगति देत है, तनसे राग वदाय ।
नित प्रपच में रत करें, विनाशीक पद पाय ॥१४४॥

॥ आठों मदों के नाम ॥



जाति, कुल, रूप च अभिमाण, ज्ञान तप।
बल, शिल्प, आनन्द, मदाष्ट ससार भाजन ॥१४५॥



जाती कुल ऐश्वर्य अरु, रूप ज्ञान अभिमान।
तप बल शिल्पी आठ ये, मद त्यागो गुणवान ॥१४५॥



॥ जाति कुलमद ॥



जात्य च राग मय मूढ, अनृत नृत उच्यते।
ममत स्नेह आनन्द कुल आरूढ़वे सदा ॥१४६॥

जो तू रागी जाति से, कुल में ममत विपेश।
यह अनित्य है राग प्रिय, कर विचार मन देख ॥१४६॥



॥ रूप मद ॥

रूप अभिमान दृष्टा, राग वृद्धन्ति जे नरा ॥
तें अन्यान मय मूढा ससार दुख दारुण ॥१४७॥

रूप,राग अज्ञान वश, जे अभिमानी मूढ।
विनाशीक तव भावना, लहै दु:ख अतिमूढ ॥१४७॥

॥ तपमद ॥

कुन्यान तप तप्त च राग वृद्धन्ति ते तपा ।
त तानि मद मद्धान, अन्यान तप श्रुत क्रिया ॥१४८॥

तप धारें कुज्ञान मय, रागी जन अति मूढ।
तप अभिमानी जीव ते, रहे मान आरूढ ॥१४८॥

॥ नान मद ॥

अनेक तप तप्ताना, जन्म कोडि कोडि भव ।
श्रुत अनेक जानन्त राग मूढ मए सदा ॥१४६॥

शास्त्र ज्ञान अभिमान वश, कोटि वर्ष तप ठान ।
ते रागी विन भेद लख, किम पावै शिवथान ॥१४६॥

॥ बलशिल्पी आदि मद ॥

मान राग सम्बध, तप दारुण नव कृन ।
शुद्ध तत्व न परयन्त, ममत दुर्गति भाजन ॥१५०॥

वल शिल्पी श्रुत आदिको, मद दुरगति दातार ।
शुद्ध तत्व देखे विना, सव जग यह नि सार ॥१५०॥

॥ कषाय निरूपण ॥

कषाय जेन अनन्तान राग अनृत कृत ॥
विश्वासी दुर्बुद्धि चिन्ते, ते नरा दुर्गति भाजन ॥१५१॥

जे कषाय त्यागे नाहिं, दुरगति दायक चार।
ते दुर्बुद्धी राग मय, कृत्य करैं निःसार ॥१५१॥

॥ लोभ कषाय ॥

लोभ अनृत सद्भाव, उत्साह अनृत कृत।
तस्य लोभ प्राप्त च, ते लोभे नरय पत ॥१५२॥

जहा लोभ तह सत्य कंह, यह प्रपच की खान।
लोभी ते अज्ञान जड, परत नरक गतिथान ॥१५२॥

॥ लोभ कषाय ॥

लोभ कुन्यान सद्भाव, अनादि भ्रमते सदा।
अनृत लोभ चिन्ते जेना, त लोभ दुरगति कारण॥१५३॥

लोभ भाव धर जगत में, भ्रमण करैं बहु जीव।
दुर्गति कारण लोभ यह, तज भजशिव तिय पीव।१५३।

॥ लोभ कषाय ॥

अशास्वत लोभ कृत्वा, अनेक कष्ट कृत सदा।
चेतन लषणो हीनस्या, लोभ दुर्गति कारण॥१५४॥

कष्ट करें अति लोभवश, जड़ संग्रह कर खूब।
दुर्गति बंधन लोभ यह, त्याग भजो निजरूप॥१५४॥

॥ मान—कषाय ॥

मान असत्य राग च, हिंसानन्दी च दारुण।
अपन चिन्त्ये जेना शुद्ध तत्त्व न पश्यते ॥१५५॥

शुद्ध तत्व जाने बिना, मान प्रपंच वढाय।
हिन्सा नदी भावना, करे अनर्थ वढाय ॥१५५॥

॥ मान- कषाय ॥

मान अशाश्वत क्रूरा, अनृत राग नदित।
असत्य आनन्द मूढस्य, रौद्र ध्याण च तिष्टते ॥१५६॥

जहां मान अनृत तहा, राग रौद्र भय खानि।
तज विवेक धारण करो, करकर निजपहिचानि॥१५६॥

॥ मान-कषाय ॥

मान बध च राग च, अर्थ विचिन्त पर।
हिंसानदी च दोष च, अनृत उत्साह कुर्व ॥१५९॥

मान जहां तह राग है, हिंसानदी आहि।
है अनृत उत्साह तह, जन्म जाय तंह वाहि॥१५९॥

॥ मान-कषाय ॥

मान राग सम्बन्ध, तप दारुण नत श्रुत।
अनृत अचेत सद्मान, कुत्यान ससार भाजन॥१६०॥

मान राग सबध से, दारुण तप कर लेय।
अनृत जड मय भाव तह, दुरगति गमन करेय॥१६०॥

॥ माया कषाय ॥

माया अनृत राग च, अशास्वत जल बिन्दुवत् ।
यौवन धन अभ्र पटलस्य, माया मयान किं कृत ॥१६१॥

मेघ पटल, जल बुदबुदा, सम, धन यौवन जान ।
माया बंधन मत करो, यह असत्य जगमान ॥१६१॥

॥ माया कषाय ॥

माया अशुद्ध परिणाम, अशास्वत सग सगते ।
दुष्ट नष्ट च सज्ञान, माया दुरगति कारण ॥१६२॥

हों अशुद्ध परिणाम तंह, जह माया के भाव ।
माया दुरगति दायिनी, त्याग करो, सद्भाव ॥१६२॥

॥ माया-कषाय ॥

माया अनन्तान करना, अमत्य राग रतो सदा।
मन, वचन, काय कर्तव्य, मायानदी सयुतो जडा ॥१६३॥

अनन्तान माया करी, कियो राग रत भाव।
ते जड बुद्धि वक्र जिय, माया नद कहाव ॥१६३॥

॥ माया-कषाय ॥

माया आनन्द सजुक्त अनृत नृत भावना।
मन वचन काय कर्त्तव्य, दुर्बुद्धि विरनाम दारुण ॥१६४॥

मायाचारी जीव के, अनृत जड मय भाव।
बक्रता, तजो सग दुख दाव ॥१६४॥

॥ माया-कषाय ॥

माया अचेत पुण्यार्थं, पाप करम च वृद्धते ।
शुद्ध द्रष्टी न पश्यते, मिथ्या माया नरय पत ॥१६५॥

पाप बढावे जीव के, यह माया जड पूर्ण ।
शुद्ध दृष्टि नाहिं देखिये, नरक दुख दारूण ॥१६५॥

॥ क्रोध-कषाय ॥

क्रोधाग्नि अशास्वत प्रोक्त, शरीर मान बघन ।
अशास्वत तस्य उत्पादिन्ते, क्रोधाग्नि धर्म लोपित ॥१६६॥

धर्म लोप हो क्रोध सू, मानादिक उपजाय ।
यह ज्वाला है क्रोध तज, भज शिवसौख्य उपाय।१६६।

॥ अधर्म कथन ॥

एता[illegible] [illegible], अधर्म तस्य पश्यते ।
रागादि मल मुच्च अधर्म सो सगीयते ॥१६७॥

रागादिक सम्पूर्ण मल, जंह क्रोधादिक भाव ।
तंह अधर्म ही देखिये, यह अधर्म दुखदाव ॥१६७॥

॥ सच्चे धर्म का कथन ॥

शुद्ध धर्म च प्रोक्त च, चेतना लक्षणो सदा ।
शुद्ध द्रव्यार्थिक नयेन, परम कर्म विवर्जितम् ॥१६८॥

द्रव्यार्थिक नय शुद्ध कर, चेतन लक्षण वन्त ।
कर्ममुक्त कर जीव को, वही धर्म शिव पथ ॥१६८॥

॥ सत्य-धर्म ॥

धर्म च आत्म धर्म च, रत्नत्रय मय सदा।
चेतना लषणो जेना, ते धरम कर्म विमुक्तय ॥१६९॥

धर्म आत्म गुण है सदा, रत्नत्रय मय जान।
कर्म विवर्जित जीवको, करे ताहि पहिचान ॥१६९॥

॥ धर्म-ध्यान ॥

धर्म ध्यान च आराध्य, ऊवकार च सुस्थित।
ह्रियकार च श्रियकार, ऊवकार च सुस्थित ॥१७०॥

धर्म ध्यान आराधिये, ऊवंकार ह्रींकार।
श्रींकार ये तीन ही, ध्यावो नित शुभसार ॥१७०॥

॥ धर्म-लक्षण ॥

धरमार्थ ग्रति अर्थं च, तिअर्थ वेदन्त युत ।
पद् कमल उवकार, धर्म ध्यान च जोयनं ॥१७५॥

रत्नत्रय मय अर्थ को, अनुभव ज्ञान कराय ।
कमल कहो ओंकार त्रय, धर्म ध्यान सुखदाय॥१७५॥

॥ धर्म-शिक्षा ॥

धम च अप्प सद्धान, मिथ्या माया निरुदन ।
शुद्ध तत्त्व च आराध्य, हियकार न्यान मय ध्रुव ॥१७६॥

शुद्ध तत्व आराधिये, मिथ्या मद सब खोय ।
यही धर्म निज गुणमयी, ह्रियकार मय जोय ॥१७६॥

॥ धर्म ध्यान के भेद ॥

पदस्थ पिंडस्थ जेना, रूपस्थ व्यक्त रूपय ।
चतुर्थं ध्यान च आराध्य, शुद्ध सम्यक् दर्शन ॥१७७॥

है पदस्थ पिंडस्थ अरु, यह रूपस्थ तृतीय ।
रूपातीत विचारिये, सम्यग्दृष्टी जीव ॥१७७॥

॥ पदस्थ धर्म ध्यान ॥

पदस्थ पद वेदन्ते, अर्थं शब्दार्थ शास्वत ।
व्यंजन तत्व सार्थं च, पदार्थं ता सतुव ॥१७८॥

ओं अरहंतादिक जहां, पद को होवे ध्यान ।
साथ साथ निज तत्व को, होवे अचल पिछान ॥१७८॥

॥ निर्मल पदस्थ ध्यान ॥

कुज्ञान त्रि न पश्यन्ते, माया मिथ्या विशादितं ।
व्यंजन च पदार्थं च, सार्धं ध्यान मय ध्रुव ॥१७९॥

रहित तीन कुज्ञान से, मिथ्या की नाहिं छांय ।
भेद ज्ञान श्रद्धान जहा, यह पदस्थ ध्रुव ध्याय॥१७९॥

॥ पदस्थ ध्यान ॥

पदस्थ शुद्ध पद सार्धं, शुद्ध तत्त्व प्रकाशक ।
शल्य त्रय निरोध च, माया मिथ्या न दृष्टते ॥१८०॥

है पदस्थ यह शुद्धपद, तत्व प्रकाशक आप ।
मिथ्या शल्यादिक रहित, भव्य करो नित जाप॥१८०॥

॥ पदस्थ ध्यान ॥

पदस्थ लोक लोकान्त, लोकालोक प्रकाशक ।
व्यंजन शास्वत सार्धं, ऊवकार च विन्दते ॥१८१॥

ओंमादिक वा व्यंजनों, के, मन्त्रो में ध्यान ।
जाने पद धारी यही, लोकालोक महान॥१८१॥

॥ पदस्थ ध्यान का महत्व ॥

अंग पूर्व च जानन्ते, पदस्थ शास्वत पदं ।
नृत अनृत तिक्त च, धर्म ध्यान मय ध्रुव ॥१८२॥

यह पदस्थ शास्वत कह्यो, सत्य रूप शुभ ध्यान ।
अंग पूर्व जाने सभी, याके धारी ज्ञान ॥१८२॥

|| पिंडस्थ ध्यान ||

पिंडस्थ ध्यान पिंडस्य स्वात्मा चिंता सदा बुधै ।
निराव। अमत्य भावस्य उत्पाद शास्वत पद ||१८३||

ज्ञान पिंड निज आतमको, चिंते यह पिंडस्थ ।
परपद त्यागे परम पद, मिले यत्न पिंडस्थ ||१८३||

|| पिंडस्थ ध्यान ||

आत्मा सद्भाव आरक्त, पर द्रव्य न चिन्तये ।
ध्यान मयो ध्यान पिंडस्य, चेतयाति सदा बुधै ||१८४||

आतम भाव में लीन हो, परकी चिंता नाहिं ।
ज्ञान मयी पिंडस्थ यह, चिंतो शिवपद चाहि||१८४||

॥ रूपस्थ-ध्यान ॥

रूपस्थ सर्वं चिद्रूप, [illegible]

शुद्ध तत्त्व स्थिरी भूत्व, [illegible]

चिंते निज चिद्रूप को, सिद्ध [illegible]

हींकार जोवे सुधी, निज में [illegible]

॥ रूपस्थ [illegible] ॥

चिद्रूप सर्वं चिद्रूप, [illegible]

मिथ्यात्व राग मुक्तस्य, [illegible]

वीतराग सम्यक्त्व मय, [illegible] ।

जिनके निर्मल तत्त्वको [illegible]

॥ रूपस्थ ध्यान ॥

रूपस्थ अर्हत रूपेण, ह्रियङ्कारेण दिष्टते ।
उनकारस्य ऊँनस्य, ऊर्ध्वं च शुद्ध ध्रुव ॥१८७॥

ओंकार शिव सिद्ध मय, अर्हं ह्रीं पद ध्यान ।
निजमें अवलोकें सुधी, पावें पद शुभ थान ॥१८७॥

॥ रूपातीत-ध्यान ॥

रूपातीत व्यक्त रूपेन, निरजन न्यान मय ध्रुव ।
मति श्रुत अवधिं दृष्ट्वा, मनपर्जय केवल ज्ञुन ॥१८८॥

रूप रहित यह ध्यान है, पंच ज्ञान मय होय ।
जहां निरजन रूप निज, रूपातीत कहोय ॥१८८॥

॥ रूपातीत - ध्यान ॥

अनन्त दर्शन न्यान, वीर्यानन्त सौख्यय ।
सर्वज्ञ शुद्ध द्रव्यार्थं, शुद्ध सम्यक् दर्शन ॥१८६॥

दर्शन ज्ञान सुवीर्य यह, सौख्य चतुष्टयवंत ।
शुद्ध द्रव्य सर्वज्ञ निज, रूपातीत लहन्त ॥१८६॥

॥ रूपातीत ध्यान ॥

प्रतिपूर्ण शुद्ध धमस्य, अशुद्ध मिथ्या तिक्तय ।
शुद्ध सम्यक्त्व सशुद्ध साधं सम्यग्दृष्टित ॥१९०॥

शुद्ध धर्म में पूर्ण हो, हो अशुद्ध से दूर ।
सम्यग्दर्शन शुद्ध हो, निज स्वभाव में चूर ॥१९०॥

॥ रूपातीत-ध्यान ॥



देव धर्म गुरु शुद्धस्य, सार्धं न्यान मय ध्रुव ।
मिथ्या त्रिविधि मुक्तस्य, सम्यक्त्व शुद्ध ध्रुव ॥१९१॥



देव धर्म गुरु ज्ञान मय, हो श्रद्धान विज्ञान ।
रहित तीन मिथ्यात सू, निर्मल श्रद्धावान ॥१९१॥



॥ रूपातीत-ध्यान ॥



देव देवाधि देव च, गुरु ग्रंथ मुक्त सदा ।
धरम शुद्ध चैतन्य, सार्धं सम्यक्त्व ध्रुव ॥१९२॥



हो जिनवर ही देव जंह, गुरु निर्ग्रंथ विचार ।
धर्म शुद्ध चैतन्य मय, यह श्रद्धा शुभसार ॥१९२॥



॥ सम्यक्त्व - महिमा ॥

सम्यक्त्व जस्य जीवस्य, दोष तस्य न पश्यते ।
तत्त्व सम्यक्त्व हीनस्य, ससारे भ्रमण सदा ॥१६३॥

सम्यग्दर्शन शुद्ध जंह, तहां दोष नहिं देख ।
सम्यग्दर्शन हीन नर, भ्रमण करे गहि टेक॥१६३॥

॥ सम्यक्त्व - महिमा ॥

सम्यक्त्व हृदय सार्धं, व्रत तप क्रिया सजुत ।
शुद्ध तत्त्व च आराध्य, मुक्ति गमन न सशया ॥१६४॥

जिनके मन सम्यक्त्व है, पुनि व्रत तप लवलीन ।
शुद्ध तत्त्व आराधते, ते पावें शिव चीन्ह॥१६४॥

॥ जिन लिंग तीन पात्र कथन ॥



लिंग च जिनवर प्रोक्त, त्रितिय लिंग जिनागम।
उत्तम, मध्यम, जघन्य च, क्रिया त्रेपन सजुत ॥१९५॥



जिनवर ने तीनों कहे, लिंग जिनागम मांय।
उत्तम मध्यम जघन्य ये, अब वरणूं सुखदाय॥१९५॥



॥ तीन पात्र स्वरूप ॥



उत्तम जिन रूपी च, मध्यम च व्रति श्रुत।
जघन्य तत्व सार्धं च, अविरत सम्यक् दृष्टित ॥१९६॥



जिन रूपी निर्ग्रंथ मुनि, उत्तम पात्र कहेय।
व्रती पात्र मध्यम जघन, अविरत सम्यक जेय॥१९६॥



॥ तीन लिंग ॥

लिंग त्रिविधि उक्त च, चतुर्थ लिंग न उच्यते ।
जिन शासने च प्रोक्त च, सम्यक्दृष्टि विशेषत ॥१६७॥

कहें तीनही लिंग हैं, चौथो लिंग न कोय ।
जिन शासन में कथन है, अब सुन आगे सोय॥१६७॥

॥ जघन्य पात्र सम्यग्दृष्टि कथन ॥

जघन्य च अव्रत नाम, जिन उक्त जिनागम ।
सार्धं ज्ञान मय शुद्ध, दशाष्ट क्रिया सजुत ॥१६८॥

अविरत सम्यकवत नर, जघन पात्र है सोय ।
अष्टादश पाले क्रिया, ज्ञानवन्त सो होय॥१६८॥

(... [illegible] की १८ क्रियाओं का वर्णन है)

... गुण्य सम्यक्त्व क्रिया ॥



[illegible] शुद्ध वमन्य, मूल गुणस्य उच्यते ।

दान चत्वारि पात्र च, सार्ध न्यान मय ध्रुव ॥१९९॥



सम्यग्दर्शन शुद्ध कर, अष्टमूल गुण पाल ।

चार दान देवे सुधी, सम्यकवन्त निहाल॥१९९॥



॥ १८ क्रिया ॥



दर्शन न्यान चारित्र, विशेषित गुण पूजय ।

अनस्तमित शुद्ध भावस्य, फासू जल जिनागम ॥२००॥



दर्शन ज्ञान चरित्र को, मनन करे निजभान ।

त्याग रात्रि भोजनसुधी, करैं छान जलपान॥२००॥

॥ शुद्ध भावना सहित क्रिया ॥

एतात क्रिया संजुत, शुद्ध सम्यक्त्व धारना ।
प्रतिमा व्रत तपश्चैव, भावना कृत सार्धय ॥२०१॥

क्रिया सहित सम्यक्त्व के, प्रतिमा ग्यारह होय ।
व्रततप के शुभ भाव जह, जिनवर एम कहोय॥२०१॥

॥ ४ सम्यक्त्व वर्णन ॥

आज्ञा सम्यक्त्व संयुक्त, भाव वेदक उपसम ।
क्षायिक शुद्ध भावस्य, सम्यक्त्व शुद्ध ध्रुव ॥२०२॥

है आज्ञा, सम्यक्त्व यह, वेदक उपशम रूप ।
क्षायिक चौथो शुद्ध है, शिव सुखदाय अनूप॥२०२॥

॥ चार पदवी ॥

उपाय देव गुण पदवी च, शुद्ध सम्यक्त्व भावना ।
पदवी चत्वारि मार्गं च, जिन उक्त शुद्ध ध्रुव ॥२०३॥

गुण पदवी सम्यक्त्व की, शुद्ध भावना भाव ।
जिनवर वचन प्रमाण कर, पदवी चार उपाव॥२०३॥

॥ सम्यग्ज्ञान ॥

मतिज्ञान च उत्पाद्यते, कमलासेन कंठ स्थित ।
ऊंकार च साधं च, ति अर्थं साधं ध्रुव ॥२०४॥

शुभ मतिमय हो ज्ञान जंह, कंठ कमल आसीन ।
तीन अर्थ ओंकार को, कर श्रद्धान प्रवीन॥२०४॥

॥ दृढ निर्मल श्रद्धान ॥

कुन्यान त्रितिनिर्मुक्त, मिथ्या छाया विक्तय ।
उत्र हिय श्रिय शुद्ध साधं न्यान पचम ॥२०५॥

मिथ्या श्राया रहित हो, रहित तीन कुज्ञान ।
पाच ज्ञान हीं, श्रीम् सू, जाने वह श्रद्धान॥२०५॥

॥ सम्यग्दृष्टी-स्वरूप ॥

देव गुरु धम शुद्धस्य शुद्ध तत्व साधं ध्रुव ।
सम्यग्दृष्टि शुद्ध च, सम्यक्त सम्यक दृष्टित ॥२०६॥

शुद्ध तत्व पहिचान युत, धर्म देव गुरु मान ।
वह सम्यग्दृष्टी परम, पद पावत शिवथान॥२०६॥

॥ सम्यक्त्व - महिमा ॥

सम्यक्त्वे जस्य शुद्धस्य, व्रत तप संजम सदा ।
अनेक गुण तिष्ठन्ते सम्यक्त्व सार्धं ध्रुव ॥२०७॥

जह निर्मल सम्यक्त्व तह, गुण अनेक आ जाय ।
व्रत तप संयम आदि यह, हों सवही समुदाय॥२०७॥

॥ सम्यक्त्व हीन तप व्यर्थ है ॥

यस्य सम्यक्त्व हीनस्य उग्र तप व्रत संजम ।
संजम क्रिया कार्जं च, मूल विना वृक्ष यथा ॥२०८॥

मूल विना ज्यों वृक्ष है, त्यों तप सम्यक हीन ।
उग्र करो संयम क्रिया, निर्मल सम्यक तीन॥२०८॥

॥ सम्यक्त्व की मुख्यता ॥

सम्यक्त्व यस्य मूलस्य, शाखा व्रत डाल नतानन्तये ।
अवो वि गुण होन्ति, सम्यक्त यस्य हृदय ॥२०९॥

जहां मूल सम्यक्त्व दृढ, गुण तरुवर तंह आप ।
शाखा पत्र प्रसून मय, बढत आपतें आप ॥२०६॥

॥ सम्यक्त्व बिना सब व्यर्थ ॥

सम्यक्त बिना जीवो जानै सुत्तगा बहुभेदय ।
अनेय व्रत चरण, मिथ्यात वाहिका ज्ञान ॥२१०॥

अंग पूर्व जाने सभी, व्रत धारे बहु भांत ।
सम्यकदर्शन बिन कहे, व्यर्थ सभी दुख पांत॥२१०॥

॥ जहाँ सम्यक् वहीं रत्नत्रय ॥

शुद्ध सम्यक्त्व उक्तं च, रत्नत्रय संजुत ।
शुद्ध तत्त्व च सद्भाव, सम्यक्त मुक्ति गामिनो॥२११॥

जह निर्मल सम्यक्त्व तह, रत्नत्रय को पुंज ।
सम्यकदर्शन देत हे, शिवपुर नंदन कुंज॥२११॥

॥ सम्यक्त्वहीन ॥

सम्यक्त जस्य तिक्त च, अनेय विभ्रम जे रता ।
मिथ्या माया मूढ दृष्टी च, संसारे भ्रमण सदा ॥२१२॥

त्याग कियो सम्यक्त्व जिन, हों अनेक भ्रम लीन ।
मिथ्या दृष्टी मूढ नर, भ्रमे जगत में दीन॥२१२॥

॥ सम्यक्त्व सूर्य ॥

सम्यक्त जस्य उत्पाद्यते, शुद्ध तत्व रतो सदा ।
दोप तस्य न पश्यते, रजनी उदं भास्कर ॥२१३॥

रवि सम्यक्त्व जहां उदय, दोप रात्रि तह दूर ।
धर्म पदारथ जग मगै, ज्यों निशितम को सूर॥२१३॥

॥ सम्यक्त्व हीन अंधा है ॥

सम्यक्त जस्य न पश्यते, अंधेन च मूढत्रय ।
कुन्यान पटल जस्य, कोशी उदय भास्कर ॥२१४॥

रवि के प्रवल प्रकाश को, घूघू देखे नाहि ।
त्यों समकित को ना लखै, अंध मूढ नर काहि॥२१४॥

॥ [illegible] [illegible]ी श्रुतज्ञानी ॥



सम्यक्त [illegible] [illegible], श्रुत ज्ञान विचक्षणा ।
स्वानन स्वान उत्पादन्ते, लोकालोकस्य पश्यते ॥२१५॥

ज्ञान विचक्षण शास्त्र लखि, देखे सम्यक रूप ।
लोकालोक निहारतो, ज्ञान नेत्र मोऽनूप॥२१५॥



॥ जीवित भी मृतक तुल्य ॥



सम्यकत जे, न पश्यते अमार्थे व्रत संजम ।
ते नरा मिथ्या भावेना, जीवितोऽपि मृत भवेत् ॥२१६॥



जे सम्यक्त्व न सरदहे, व्रत संयम कर हीन ।
ते मिथ्यात्वी जीवते, मृतक तुल्य मतिहीन॥२१६॥



॥ सम्यक्त्वी का उदय ॥

उदय सम्यक्त ह्रदय यस्य, त्रैलोक मुदय सदा।
कुन्यान राग तिक्त च, मिथ्या माया विलीयते॥२१७॥

समकित कर मनमें उदय, तीन लोक में व्याप।
उदय भयो यह मानिये, मेट सकल सताप॥२१७॥

॥ सम्यक्त्व-महत्व ॥

सम्यक्त सहित नरयामि, हीन सम्यक्त्व न च किया।
सम्यक्त मुक्ति मार्गस्य, हीनो सम्यक्त्व निगोदय॥२१८॥

समकित हो तो मोक्ष हो, नातर-नरक निगोद।
मुक्ति मार्ग में दीप यह, समकित है अवलोक॥२१८॥

॥ सम्यक्ती की महिमा अवर्णनीय है ॥

जस्य हृदय सम्यक्तस्य, उदय शास्वत थिर।
तस्य गुण शेष नागस्य, आसक्तं गुण अनतय ॥२२३॥

तिनके गुणको फणपती, कह नहिं सकत बनाय।
जिनके मन सम्यक्त्व है, तिनके गुण सबगाय॥२२३॥

॥ सम्यक्त्वी का प्रताप ॥

सम्यक्त दिष्ट जेना, उदय भुवनत्रय।
लोकालोक त्रैलोकं च, आलम्बनी सुरा जया ॥२२४॥

तीन लोक में एक है, पूज्य वही नर नाथ।
जिनके मन सम्यक्त्वहै, तिन प्रति नाऊ माथ॥२२४॥

॥ अष्टमूल गुण ॥

मूल गुण च उत्पार्धते, फल पच न दिष्टते ।
घड़, पीपर, पिलूरनी च, पाकर, उदम्बरस्तथा ॥२२५॥

वड, पीपर, ऊमर, कठ-ऊमर, पाकर, पांच ।
फल त्यागे पद होत है, श्रावक जैनी सांच॥२२५॥

॥ अष्टमूल गुण (मास त्याग) ॥

फलानि पच न दिस्यन्ते, त्रस रक्षनार्थय ।
अतीचार उत्पाद्यन्ते, तस्य दोष निरोधय ॥२२६॥

त्रस रक्षा के हेतु यह, पांचों फल को त्याग ।
करोदयाग्रतिचार तज, तबहिं धन्य वडभाग॥२२६॥

॥ उटमूल गुण (मास त्याग) ॥

अन्न जथा फल पुष्प, वीर्यं सन्मूर्छन जथा ।
तथा हि दोष विक्त च, अनेय उत्पाद्यन्ते जथा ॥२२७॥

त्रस जीवन को घात जंह, अन्न, फूल, फल, माय ।
सन्मूर्छन की कर दया, त्यागो तव सुख पाय ॥२२७॥

॥ अष्टमूल गुण (मद्यत्याग) ॥

मद्य च मान सम्बन्ध, ममत राग पूरित ।
अशुद्ध आळाप वाक्य, मद्य दोष सगीयते ॥२२८॥

मदिरा तें मन राग मय, बोले वचन अशुद्ध ।
अब मधुके सब दोष सुन, आगे हो मति बुद्ध ॥२२८॥

॥ मधु के अतीचार ॥

सधान सन्मूर्छन जेन, तिक्तते जे विचक्षणा।
अनन्त भावना दोप, न करोति शुद्ध दृष्टि ॥२२९॥

सुन अचार सधान में, होवे अगणित जीव।
त्याग विचक्षण करत हैं, शुद्धदृष्टी जग पीव॥२२९॥

॥ लौनी (मक्खन) में दोष ॥

मांस भक्ष्यते जेन, लोनी मुहूर्त गतस्तथा।
न भुक्त न उक्त च, व्यापार न क्रीयते ॥२३०॥

एक मुहूरत शुद्ध है, तुरत करो प्राशूक।
लौनी मरजादा राहित, खाय न वेंचै टूक ॥२३०॥

॥ ॰ी मठा में दोष ॥



दुदल ॰ठा दुग्ध न जे नरा मुक्त भोजन ।
स्वाद ॰ ॰ति ॰ना भुक्त मास दोषन ॥२३१॥



स्वाद चलित मरजाद विन, मही दही को त्याग ।
जे खावें ते मास को, दोष लगावे राग ॥२३१॥



॥ शहद नहीं बेचना ॥



मधुर ॰मधुरश्चैव, व्यापार न च ,क्रीयते ।
मधुर मिश्रित जेना, दोष मुहूर्त सन्मूर्छन ॥२३२॥



वणिज न कीजे शहद को, पाप बढे दुख होय ।
अब गोरस मरजाद सुनो, दोष मुहूरत सोय॥२३॰



॥ मास के अतीचार ॥

सन्मूछन जथा जानन्ते, शाक पहुपादि पत्रक ।
तिके न च भुक्त च, दाप मास उच्यते ॥२३३॥

सन्मूर्छन उत्पन्न हो, शाक पुष्प पत्रादि ।
ऐसे तिन कू त्यागिये, मांस दोष हो वादि ॥२३३॥

॥ कद मूल तथा द्विदल का त्याग ॥

कद बीय यथा नेय, सन्मूर्छन बिदलस्तथा ।
न च उक न च भुक्त च, मूल गुण प्रतिपालए ॥२३४॥

कदमूल और द्विदल में, हों सन्मूर्छन जीव ।
खावो तज,व्यापार तज, मूलगुणी तब हीव ॥२३४॥

॥ आतम गुण ॥

दर्शन न्यान चारित्र, साधं शुद्धात्मा गुण।
तत्त्व नित्य प्रकाशेन, साधं न्यान मय ध्रुव ॥२३५॥

दर्शन ज्ञान चरित्र यह, आतम गुण पहिचान।
इनतें तत्त्व प्रकाश निज, कर मन दृढ श्रद्धान॥२३५॥

॥ सम्यग्दर्शन स्वरूप ॥

दर्शन तत्त्व सार्धं च, तिअर्थं शुद्ध दृष्टितं।
मय मूरति सम्पूर्ण च, स्वात्म दर्शन चिन्तन ॥२३६॥

कह्यो तत्त्व श्रद्धान को, सम्यग्दर्शन सार।
तत्त्व निजातम स्वयं है, अर्थ तिअर्थं विचार॥२३६॥

॥ व्यवहार-सम्यक्त्व ॥

दर्शन सप्त तत्त्वान, दर्व काया पदार्थंक।
जीव द्रव्य च शुद्ध च, सार्धं शुद्ध दर्शन ॥२३७॥

सप्त तत्त्व, षट् द्रव्य को, नव पदार्थ पंचास्त।
इनमें भी यह जीव ही, शुद्ध रूप सुप्रशस्त ॥२३७॥

॥ सम्यग्दर्शन ही उत्कृष्ट है ॥

दर्शन ऊर्ध अर्धं च, मध्य लोकेन दृष्टे।
षट् कमल ति अर्थं च, जोय सम्यक् दर्शन ॥२३८॥

तीन लोक में यह कहो, सम्यग्दर्शन सार।
तीन अर्थ षट् कमल में, देखो दृष्टि प्रसार ॥२३८॥

॥ निर्मल सम्यग्दर्शन ॥



दर्शन जस्य उत्पादते, तत्र मिथ्या न दृश्यते ।
कुन्यान मलश्चैव, तिक्त जोग समाचरेत् ॥२३६॥



मिथ्या अरु कुज्ञान मल तहां न दीखे कोय ।
निर्मल सम्यग्दर्श को, दर्श ३६॥

॥ निर्मल-

मल विमुक्त मूढादि,
आशा स्नेह लोभ च,

तीन मूढता
आशा,लोभ,स्नेह,

॥ निर्मल - सम्यग्दर्शन ॥

दर्शन शुद्ध तत्त्वार्थं, लोक मूढ न दृष्टते ।
जस्य लोक च सार्थं च, तिक्तवे शुद्ध दृष्टित ॥ २४१ ॥

लोक मूढता रहित यह, सम्यग्दर्शन शुद्ध ।
भव्यजीव पालें सुधी, हो नितानित प्रति बुद्ध ॥२४१॥

॥ निमल - मम्यक्त्व ॥

देव मूढ च प्रोक्त च, क्रीयते जेन मूढय ।
दुर्बुद्धि उत्पाद्यते जावत्, तावत् दृष्टि न शुद्धये ॥२२४॥

कही, देव की मूढता, - वश जो भी अज्ञान ।
दृष्टि न देखे शुद्ध वह, दुर्बुद्धि पहिचान ॥२४२॥

॥ निर्मल सम्यग्दर्शन ॥



दर्शन जस्य उत्पादते, तत्र मिथ्या न दृश्यते।
कुज्ञान मलश्चैव, तिक्त जोग समाचरेत् ॥२३६॥



मिथ्या अरु कुज्ञान मल, तहां न दीखे कोय।
निर्मल सम्यग्दर्श को, दर्श जहां शुभ होय ॥२३६॥



॥ निर्मल-सम्यग्दर्शन ॥



मल विमुक्त मूढादि, पचावीस न दिष्यते।
आशा स्नेह लोभ च, गारव त्रिविधि मुक्तय ॥२४०॥



तीन मूढता आदि यह, पच्चिस मल न दिखाय।
आशा, लोभ, स्नेह, मद, रहित दर्श जंह पाय ॥२४०॥



॥ निर्मल-सम्यग्दर्शन ॥



दर्शन शुद्ध तच्चार्थ, लोक मूढ न दृष्टते।
जस्य लोक च सार्थ च, तिक्तवे शुद्ध दृष्टित ॥२४१॥



लोक मूढता रहित यह, सम्यग्दर्शन शुद्ध।
भव्यजीव पालें सुधी, हो नितनित प्रति बुद्ध ॥२४१॥



॥ निर्मल-सम्यक्त्व ॥



देव मूढं च प्रोक्त च, क्रीयते जैन मूढय।
दुर्बुद्धि उत्पाद्यत जावत्, तावत् दृष्टि न शुद्धये ॥२४२॥



कही, देव की मूढता, -वश जो भी अज्ञान।
दृष्टि न देखे शुद्ध वह, दुर्बुद्धि पहिचान ॥२४२॥



॥ अदेव मानने का निषेध ॥

अदेव देव उक्त च, मूढ दृष्टि पराकृत ।
अदेव अशास्वत जेना, तिक्तते शुद्ध दृष्टित ॥२४३॥

पहले कहे अदेव तज मूढ बुद्धि कर दूर ।
शुद्ध दृष्टि सम्यक्त्व की, धारण कर भरपूर ॥२४३॥

॥ पाखंडि मूढता रहित सम्यक्त्व ॥

पाखंडी मूढ जानन्ते, पाखंडी भ्रम रतो सदा ।
प्रपंच पुद्गलार्थं च, पाखंडी मूढ न संशया ॥२४४॥

परपुद्गल पर पच रत, विभ्रम मय संजुत्त ।
पाखंडि अज्ञान को, तजिये यह जिन उत्त॥२४४॥

॥ पाखंडि मूढ्ता ॥



अनृत अचत उत्पादन्त, मिथ्या माया लोक रजन ।
पाखडा मूढ विश्वास, नरय पतते नरा ॥२४५॥



मिथ्या माया में पगे, अनृत जड़, ते मूढ ।
पाखडि विश्वास नर, नरक पडे दुख दूढ ॥२४५॥



॥ पाखंडि मूढता ॥



पाखंडो वचा निश्वास समय मिथ्या प्रकाशये ।
जिन द्रोही दुर्बुद्धि जेना आराध्य नरय पत ॥२४६॥



पाखडी के वचन को, जे विश्वासें भार ।
जिनद्रोही दुर्बुद्धि जह, त्रसै तहां मति जार ॥२४६॥



॥ पाखंडि-मूढ़ता ॥

पाखंडी रमति अन्यानी　　कुलिंगी जिन उक्त लोपन।
जिन लिंगी मिथ्यात्व य　　जिन द्रोही वचन लोपन ॥२४७॥

पाखंडी अज्ञान नर, जैन मार्ग से दूर।
छलकर धारें जैनमत, ठगते जग को क्रूर ॥२४७॥

॥ पाखंडि मूढ़ता त्याग ॥

पाखंडी उक्त मिथ्यात्व　　वचन विश्वास क्रीयते।
उक्त च शुद्ध दृष्टि च,　　दर्शन मल विमुक्तय ॥२४८॥

पाखंडी मिथ्या वचन, कहे न सुनिये कोय।
सम्यग्दर्शन के वचन, दर्शन तें मल खोय ॥२४८॥

॥ २५ मल वर्णन ॥

मदाष्ट मान सम्बन्ध कषाय दोष निमुक्तय।
दर्शन मल न दिष्टन्ते, शुद्ध दृष्टि समाचरेत् ॥२४९॥

आठ कहे मद आठ ही, शंकादिक हैं दोष।
षट अनायतन, तीन ये, मूढभाव, दुख कोष ॥२४९॥

॥ सम्यग्ज्ञान कथन ॥

न्यान तत्व वेदन्ते, शुद्ध तत्व प्रकाशक।
शुद्धात्मा ति अर्थ शुद्ध न्यान न्यान प्रयोजन ॥२५०॥

ज्ञान तत्त्व अब कहत हैं, शुद्धातम करतार।
यही प्रयोजन जीवको, तीन लोक में सार ॥२५०॥

॥ सम्यग्नान स्वरूप ॥



न्यानन न्यान मालव्य पच दिप्ति परास्थित ।
उत्पन्न केवल न्यान, शुद्ध दृष्टि च इष्टित ॥२५१॥



अवलम्बन कर ज्ञानको, पंच दिप्ति पहिचान ।
शुद्ध दृष्टि श्रद्धान कर, तव हो केवल ज्ञान ॥२५१॥



॥ ज्ञान ही नेत्र है ॥



ज्ञान लोचन भव्यस्य, जिन उक्त सार्धं ध्रुव ।
ज्ञेये तानि विन्यान, शुद्ध दृष्टि समाचरेत् ॥२५२॥



ज्ञान नेत्र हैं भव्य के, वस्तु स्वरूप दिखाय ।
जिनवाणी में भक्तिअति, भेद ज्ञान वलपाय ॥२५२॥



॥ सम्यक्चारित्र निरूपण ॥



आचरण ।स्थिरीभूत, शुद्ध तत्त्व ति अर्थक ।
ऊनकार च वेदन्ते, तिष्ठत शाश्वत ध्रुव ॥ २५३॥



थिर हो शुभ चारित्र में, शुद्ध तत्त्व पहिचान ।
ओंकार अनुभव करो, शास्वत शिव सुखमान॥२५३॥

॥ चारित्र के भेद ॥



आचरण द्विविधि प्रोक्त, सम्यक्त, सजम ध्रुव ।
प्रथम सम्यक्त चरणस्य, स्थिरी भूतस्य सयम ॥२५४॥



पहिलो समकित आचरण, दूजो सयम रूप ।
समकित सयम आचरो, दोऊ शिव सुख कूप ॥२५४॥



॥ सयमाचरण चारित्र ॥



चारित्र सजम चरण, शुद्ध तत्त्व निरीक्षण।
आवरण अवध्य दृष्टा, सार्धे शुद्ध दृष्टित ॥२५५॥



शुद्ध संयमाचरण यह, चारित निज पहिचान।
कर्म बंध से बचत हैं, इहि धारण श्रद्धान ॥२५५॥



॥ तीन पात्र निरूपण ॥



पात्र त्रिविधि जानन्ते, दान तस्य सुमानना।
जिन रूपी उत्कृष्ट च, अव्रत जघन्य भवेत् ॥२५६॥



पात्र त्रिविधि जानो सही, तिनको दीजे दान।
जिन रूपी उत्तम लखो, जघन सुश्रद्धावान ॥२५६॥



॥ उत्तम पात्र भेद ॥

अवधिं येन सम्पुर्णं, ऋजु विपुल च दिष्टे ।
मनपजय केवल च, जिन रूपी उत्तम बुधै ॥२५६॥

जिन रूपी उत्तम अचल, ज्ञान अवधि मन पार ।
केवल ज्ञानी आदि जिन, उत्तम पात्र विचार॥२५६॥

॥ मध्यम पात्र कथन ॥

उत्कृष्ट श्रावक जैना, मध्य पात्र च उच्यते ।
मति श्रुतस्य सम्पूर्णं, अवधि भावना क्रीयते ॥२६०॥

हो श्रावक उत्कृष्ट वो, मध्यम पात्र कहाय ।
मतिश्रुत ज्ञानी पूर्ण वह, अवधि भावना भाय॥२६०॥

॥ मध्यम पात्र ॥

आज्ञा वेदक सम्यक्त, उपसम सार्धे ध्रुव।
पदवी द्वितीय आचार्य च, मध्य पात्र सदा बुधे ॥२६१॥

याज्ञा वेदक उपशमा, तीनों समकित सार।
धारै पद आचार्य के, गहै पात्र गुण धार ॥२६१॥

॥ मध्यम पात्र ॥

ऊवकार च वेदन्ते, ह्रियकार श्रुत उच्यते।
अचषु दर्शन जोयते, मध्य पात्र सदा बुधे ॥२६२॥

ओंम् ह्रीं पद अनुभवै, ज्ञानी अन्तर नैन।
रुद्धिवान वह पात्र है, मध्यम पद सुख दैन॥२६२॥

॥ उत्तम पात्र भेद ॥

अवधि येन मम्पूर्णं, ऋजु विपुल च दिष्टते।
मनपजय केवल च, जिन रुपी उत्तम बुधै ॥२५८॥

जिन रूपी उत्तम अचल, ज्ञान अवधि मन पार।
केवल ज्ञानी आदि जिन, उत्तम पात्र विचार॥२५६॥

॥ मध्यम पात्र कथन ॥

उत्कृष्ट श्रावक जेना, मध्य पात्र च उच्यते।
मति श्रुतस्य सम्पूर्णं, अवधि भावना कीयते ॥२६०॥

हो श्रावक उत्कृष्ट वो, मध्यम
मतिश्रुत ज्ञानी पूर्ण वह, अवधि

॥ मध्यम पात्र ॥

आज्ञा वेदक सम्यक्त, उपसम सार्धे ध्रुव।
पदवी द्वितीय आचार्य च, मध्य पात्र सदा बुधे ॥२६१॥

आज्ञा वेदक उपशमा, तीनों समकित सार।
धारे पद आचार्य के, गहे पात्र गुण धार ॥२६१॥

॥ मध्यम पात्र ॥

ऊनकार च वेदन्ते, ह्रियकार श्रुत उच्यते।
अचक्षु दर्शन जोयते, मध्य पात्र सदा बुधे ॥२६२॥

ओंम् ह्रीं पद अनुभवै, ज्ञानी अन्तर नैन।
उद्धिरान वह पात्र है, मध्यम पद सुख देन॥२६२॥

॥ मध्यम पात्र ॥

प्रतिमा एकादशम् जेना, व्रत पच अणुव्रत ।
साधे शुद्ध तत्त्वार्थे, धर्म ध्यान च ध्यायत॥२६३॥

प्रतिमा ग्यारहवीं धरे, पंच अणुव्रत चीन्ह ।
शुद्ध तत्त्व जाने वही, धर्म ध्यान में लीन॥२६३॥

॥ जघन्य पात्र निरूपण ॥

अव्रत त्रितिय पात्र, देव शास्त्र गुरुमान्यते ।
सद्दहति शुद्ध सम्यक्त, साधे ज्ञान मय ध्रुव ॥२६४॥

अविरत सम्यकवन्त नर, त्रितिय जघन्यम् पात्र ।
देव शास्त्र गुरु की करें, भक्ति हर्ष मय गात्र॥२६४॥

॥ जघन्य पात्र ॥

शुद्ध दृष्टी च सम्पूर्ण, मल मुक्त शुद्ध भावना ।
मति कमलासने कंठ, कुन्यान त्रिनिधि मुक्तय ॥२६५॥

शुद्धदृष्टि सम्पूर्ण है, पचिस मल विन भाव ।
रहित तीन कुज्ञान से, वह जघन्य दरसाव॥२६५॥

॥ सम्यग्दृष्टि स्वरूप ॥

मिथ्या त्रिविधि न दृष्टन्ते, शल्य त्रय निरोधन ।
शुद्ध च शुद्ध द्रव्यार्थं, अव्रत सम्यक् दृष्टित ॥२६६॥

मिथ्या तीन न देखियत, शल्य तीन को रोध ।
शुद्ध द्रव्य श्रद्धान जह, अविरत सम्यक शोध॥२६६॥

॥ सम्यग्दृष्टि १८ लाख योनियों में नहीं जाता ॥



त्रिविधि पात्र च दान च, भावना चिन्तन बुधै ।
शुद्ध दृष्टि रतो जीवा, अट्ठारन लच त्यक्तय ॥२६७॥



त्रिविधि पात्र को दान दे, शुद्ध दृष्टि निज लीन ।
वह कुयोनि पावै नहीं, लाख अठारन कीन ॥२६७॥



॥ कौन २ अट्ठारन लाख योनियों का त्याग ॥



नीच इतर अप् तेज, वायु पृथ्वी वनस्पती ।
विकलत्रयं योनि च, अट्ठारन लच तिक्तय ॥२६८॥



नित्य इतर निगोद हैं, थावर विकलत्रेय ।
पशुगति इनके भेद सब, अट्ठारन लख हेय ॥२६८॥



॥ सम्यग्दृष्टि दातार ॥

शुद्ध सम्यक्त सयुक्त, शुद्ध तत्त्व प्रकाशकः ।
ते नरा दुःख हीनस्य, पात्र दान रतो सदा ॥२६६॥

सम्यग्दर्शन शुद्ध जह, तहां तत्त्व को भान ।
ते नर दुख से हीन हैं, दें नित पात्र सुदान॥२६६॥

॥ चार दान ॥

पात्र दान चत्वारि ज्ञान आहार भैषज ।
अभय च भय नास्ति दान पात्र सदा बुधै ॥२७०॥

आहारौषधि,ज्ञान अरु, अभय दान, ये चार ।
देवै सम्यकवन्त नर, पात्रनि को शुभ सार॥२७०॥

॥ चार-दान फल ॥

न्याप्त दान च न्यान च, आहार दान आहारय ।
श्रराध्य भेषजश्चैव, अभय अभय दानय ॥२७१॥

इनि चारों ही दान सूं, फल पावो शुभ च्यार ।
जिन ग्रंथनि में देखिये, पात्र दान फल सार॥२७१॥

॥ पात्र दान का फल ॥

पात्र दान च शुद्ध च, कर्म क्षिपति सदा उधै ।
जे नरा दान चिन्तते, अव्रत सम्यक् दृष्टित ॥२७ ॥

पात्र दान से कर्म को, क्षय हो शिव सुख पाय ।
यह विधि जानें समकिती, लिखी जिनागम माय॥२७२॥

॥ दान की उपमा ॥



पात्र दान वट बीज, धरनी वृद्धन्ते जेतवा ।
ज्ञान वृद्धन्त दान च दान चिन्ता सदा बुधै ॥२७३॥



पात्र दान वड बीज सम, जब पावे विस्तार ।
तब अनुभव वे ही करें, दाता पात्र विचार॥२७३॥



॥ पात्र दान मोक्ष का कारण है ॥



पात्र दान मोक्ष मार्गस्य, कुपात्र दुर्गति कारण ।
विचारण भव्य जीवस्य पात्र दान रतो सदा ॥२७४॥



पात्र दान शिव मार्ग है, दुर्गति हेतु कुपात्र ।
यह विचार जे भव्य जन, देवें दान सुपात्र ॥२७४॥



॥ कुपात्र कौन है ॥

कुगुरु कुदेव उक्त च, कुधर्म प्रोक्त सदा।
कुलिंगा जिन द्रोही च, मिथ्या दुर्गति भाजन ॥२७५॥

कुगुरु कुदेव कुधर्म ये, हैं कुलिंग जिन द्रोहि।
दुर्गति कारण जानिये, यह कुपात्र दल मोहि ॥२७५॥

॥ कुपात्र दान फल ॥

तस्य दान च विनय च पुन्यानि मूढ दृष्टिते।
तस्य दान विधान जेन, संसारे दुख दारुण ॥२७६॥

तिन कुपात्र को दान दे, विनय करें जे मूढ।
दारुण दुख जग में लहैं, ते अज्ञानी गूढ ॥२७६॥

॥ पात्र की उपमा ॥



पात्र अपात्र निश्रपन्न, पन्नग गऊ च उच्यते ।
तृण भुक्त च दुग्ध च, दुग्ध भुक्त विष पुन ॥२७७॥



है, सुपात्र गौ ज्यों चरै, तृण, नित देवै दूध ।
है कुपात्र ज्यों साप नित, जहर देय, पिय दूध॥२७७॥



॥ मिथ्यादृष्टि भी पात्र दान के भाव से शुद्ध हो ॥



पात्र दान च भावेन, मिथ्या दृष्टि च शुद्धये ।
भावना शुद्ध सम्पूर्ण, दान फल स्वर्गामिनो ॥२७८॥



पात्र दान की भावना, यदि मिथ्याती भाय ।
तो वह होवे शुद्ध अति, स्वर्ग सौख्य फलपाय।२७८।

॥ सुदान कुदान का फल ॥

पत्र उा॰ रता यत, ससारे दु॰ख निपातए ।
कुपात्र दान रता जीवा, नरय पतित वे नरा ॥२७६॥

पात्र दान दाता सुधी, जग के दुःख खपांय ।
दें कुपात्र को दान जे, नरक दुःख अतिपांय ॥२७६॥

॥ पात्र दान ॥

पात्र दान च प्रतिपूर्णं, प्राप्त च परम पद ।
शुद्ध तत्त्व च साधं च, न्यान मय साधं ध्रुव ॥२८०॥

पात्र दान से परम पद, पावैं निश्चय मान ।
ज्ञानी निज पहिचान कर, करिये दृढ श्रद्धान ॥२८०॥

॥ पात्र दान की अनुमोदना ॥

पात्र प्रमोदन कृत्वा, त्रैलोक्य मुद्रा उच्यते।
यत्र तत्र उत्पायन्ते, प्रमोदन तत्र उच्यते ॥२८१॥

पात्र दान अनुमोदना, में प्रमोद हो जाहि।
जह जह तीनों लोकमें, जावें तंह सुख ताहि॥२८१॥

॥ पात्र भक्ति का फल ॥

पात्र अभ्यागत कृत्वा, त्रैलोक्य अभ्यागत भवेत्।
जत्र तत्र उत्पायन्ते, तत्र अभ्यागत भवेत् ॥२८२॥

पात्रनि कू जे आदरें, ते नर आदर पाय।
तीन लोक में जाय जह, तह २ सुख विलसाय॥२८२॥

॥ पात्र मिलै, यह भावना ॥

पात्रस्य चिन्तन दृश्या, तस्य चिन्त सुचिन्तये ।
चेतयन्ति प्राप्त नीयं, पात्र चिन्ता सदा बुधैः ॥२८३॥

कब सुपात्र मिलिहैं हमें, यह चिन्तो दिन रैन ।
इन भावनि तें सुख बढ़ै, पावै नित अतिचैन॥२८३॥

॥ कुपात्र दान का फल ॥

कुपात्र अभ्यागत कृत्वा, दुर्गति अभ्यागत भवेत् ।
सुगति तत्र न दिष्टते, दुर्गति च भवे भवे ॥२८४॥

दे कुपात्र को दान अरु, करै विनय सन्मान ।
दुर्गति कारण जानिये, यह अपनो अज्ञान॥२८४॥

॥ कुपात्र-फल ॥

कुपात्र प्रमोदन कृत्वा, एकेन्द्रिय थावरे उत्पाद्य ।
तिरिय नरय प्रमोद च, कुपात्रं दान फल सदा ॥२८५॥

कर प्रमोद अनुमोदना, तिन कुपात्र को दान ।
पशु थावर नरकादि के, दुख देवै यह मान॥२८५॥

॥ सुपात्र दान ॥

पात्र दान च शुद्ध च, दान शुद्ध सदा भवेत् ।
तत्र दान च मुक्त च, शुद्ध दृष्टी जथा मय ॥२८६॥

दान शुद्ध शुभ पात्र को, देवै श्रद्धावान ।
अमृत फल पावे वही, यह निश्चय पहिचान ॥२८६॥

॥ शुद्धदाता पात्रदान ॥

पात्र शिवा च दान न, दात्र दानस्य पात्रय ।
दान पात्र च शुद्ध च, दान निर्मलत सदा ॥२८७॥

दान पात्र दातार यह, तीनों निर्मल होंय।
तव कछुफल शुभ मिलतहै, दुर्गति दुख सब खोय२८७

॥ दान दाता पात्र ॥

दान शुद्ध सम्यक्त च, पात्र तत्र प्रमोदन ।
दात्र पात्र च शुद्ध च दान निर्मलत सदा ॥२८८॥

दाता सम्यग्दृष्टि हो, प्रमुदित लख शुभ पात्र ।
दानद्रव्य निर्मल यदा, तदा सदा सुख पात्र ॥२८८॥

॥ दाता पात्र ॥



पात्र तत्र शुद्ध च, दात्र प्रमोद कारण।

पात्र दात्र शुद्ध च, उक्त दान जिनागम ॥२८९॥



जहां पात्र हो शुद्ध यह, दाता प्रमुदित अंग।

दोनों शुद्ध जहां भये, यह जिन वचन प्रसंग ॥२८६॥



॥ कुदान ॥



मिथ्या दृष्टी च दान च, पात्र न गृहिते पुन।

जद पात्र गृहिते दान, पात्र अपात्र उच्यते ॥२९०॥



दाता मिथ्या दृष्टि हो, दान कुद्रव्य कुपात्र।

तंह सुख कैसे देरिये, भव भव दुखउत्पात ॥२९०॥



॥ कुदान की उपमा ॥

मिथ्या दान विष प्रोक्त, घृत दुग्ध च विनाशये।
घीव संगा दुग्ध च, गुण नास्ति जथा पुनः ॥२६१॥

दूध घीव ज्यों नसत है, मलिन वस्तु संयोग।
त्यों विष मिथ्या दान है, देवै भव भव शोग॥२६१॥

॥ मिथ्या दृष्टी की संगति ॥

मिथ्या दृष्टी च संगेन, गुण च निगुर्णं भवेत्।
मिथ्या दृष्टी च जीवस्य, संग त्यजन्ति सदा बुधे॥२६२॥

मिथ्यात्वी की संगती, गुणिजन को गुण खोय।
तातैं सज्जनता चहो, तो त्यागो सब कोय ॥२६२॥

॥ कुसगति ॥

मिथ्यात्व सगते जेना, दुर्गति भजति ते नरा ।
मिथ्या सग विनिर्मुक्त, शुद्ध धर्म रतो सदा ॥२६३॥

मिथ्यात्वी की संगती, दुर्गति के दुख देय ।
यहि संगति त्यागे सुधी, धर्म करे सुख लेय ॥२६३॥

॥ कुसगत देश त्याग दो ॥

मिथ्या सग न कर्तव्य, मिथ्या वास न वासत ।
दूरे त्यजन्ति मिथ्यात्व, देशादि त्यक्तय पुन ॥२६४॥

मिथ्या सगति त्यागिये, जाहु न तिनके थान ।
मिथ्याती को देश हू, तज यह जिनवर आन ॥२९४॥

॥ मिथ्यात्वी कुटुम्ब को त्याग दो ॥



मिथ्या दूरे हि बाधन्ति, मिथ्या सग न दिष्टते ।
मिथ्या माया कुटुम्बस्य सग विरचे सदा बुधैः ॥२६५॥



निज कुटुम्ब को त्याग यदि, मिथ्यामत में होय।
बचो दूर तें भव्य जन, तह तें जंह वह होय॥२६५॥



॥ दुख और सुख ॥



मिथ्यात्व परम दु खानी, सम्यक्त परम सुख ।
तत्र मिथ्यात्व त्यक्तन्ति, शुद्ध सम्यक्त सार्थय ॥२६६॥



परम दुःख मिथ्यात्व है, परम सौख्य सम्यक्त्व।
त्याग करो मिथ्यात्व को, गहो निजातमतत्व॥२६६॥



॥ अनस्तमित व्रत ॥

अनस्तामित वेधादिय च, शुद्ध धर्म प्रकाशये ।
साधें शुद्ध वत्म च, अनस्तमित रतो सदा ॥२६७॥

सूर्य अस्त के दो घडी, पहले भोजन लेय ।
धर्म प्रकाशक वह सुधी, व्रत अनस्तमित ध्येय॥२६७॥

॥ अनस्तमित व्रत ॥

अनस्तमित कृत जैना, मन, वच, काय, कृतं ।
शुद्ध भाव च भाव च, अनस्तामित प्रति पालए ॥२९८॥

यह अनस्तामित व्रत करे, जो मन, वच, तन सेति ।
शुद्ध भाव तिनके रहे, जिन मरयादा एति ॥२६८॥

॥ बासी भोजन ॥

अनस्तमित जो पालन्ते, बासी भोजन च त्यजय ।
रात्रि भोजन कृत जेना, मुक्त तस्य न शुद्धये ॥२९९॥

रात्रि वनो, वासो तजो, जो अनस्तमितवत ।
ऐसो भोजन जे करें, ते क्यों करुणावत ॥२९९॥

॥ चार प्रकार आहार ॥

खाद्य स्वाद्य पीन च, लेप आहार कीयते ।
बासी स्वाद विचलन्ते, त्यक्त अनस्तमित कृत ॥३००॥

खाद्य स्वाद्य आहार है, लेह्य पेह्य ये चार ।
स्वाद चलित इनको तजो, वासी तज यह सार ॥३००॥

॥ अनस्तमित व्रती ॥

अनस्तमित पालत जेना, रागादि दोष विचिन्तिय ।
शुद्ध तत्त्व च भाव च, सम्यग्दृष्टि च पश्यते ॥३०१॥

जे अनस्तमित व्रत करें, राग द्वेष तज दोय ।
ते शुद्धातम भावतें, सम्यग्दृष्टी होय ॥३०१॥

॥ वे श्रावक नहीं हैं ॥

शुद्ध तत्त्व न जानन्ते, न सम्यक्त शुद्ध भावना ।
श्रावक व्रत न उत्पाद्यन्ते, अनस्तमित न शुद्धये ॥३०२॥

शुद्धतत्त्व जाने नहीं, नाहिं सम्यक्त विचार ।
ते अनस्तमित को तजे, ते नाहिं श्रावक सार॥३०२॥

॥ अनस्तमित व्रत ॥



जे नरा शुद्ध दृष्टी च, मिथ्या माया न दृश्यते ।
देव श्रुत गुरु शुद्ध, त अनस्तामितं व्रत ॥ ३०३॥



मिथ्या माया रहित जे, सम्यग्दृष्टी जीव ।
देव धर्म गुरु भक्त सो, चित अनस्तमित दीव॥३०३॥



॥ जलगालन विधि विचार ॥



पानी गालत जेनापि, अहिंसा चित्त शंकये ।
विलछित शुद्ध भावेन, फासु जल निरोधन ॥३०४॥



अनछानो पानी पियें, विलछानी न सम्हार ।
ते हिंसक जन जगत में, पावें दु ख अपार ॥३०४॥



॥ जलगालन विचार ॥

जीव रक्ष पट् कायस्य, शक्ये शुद्ध भावना।
श्रावक शुद्ध दृष्टी च, जल फास प्रवर्तते ॥३०५॥

छहों काय के जीव की, रक्षा भाव विचार।
श्रावक सम्यग्दृष्टि वह, जलगालन में स्यार ॥३०५॥

॥ अविरत श्रावक का उपदेश ॥

जल शुद्ध मन शुद्ध, अहिंसा दया निरूपन।
शुद्ध दृष्टी प्रमाण च अव्रत श्रावक उच्यते ॥३०६॥

जल पीवें जब शुद्ध तब, मन भी शुद्ध विचार।
क्रिया अहिंसा धर्म की, गह अविरत आगार ॥३०६॥

॥ षट् कर्मोपदेश ॥

[illegible] [illegible] मना, षट् कम प्रतिपालये ।
ष_ कम [illegible]विधिमेव, शुद्ध अशुद्ध पश्यते ॥३०७॥

द्विविधि षट् करम भेद हैं, शुद्ध अशुद्ध विचार ।
तज अशुद्ध शुभ पालते, श्रावक अविरत सार ।३०७।

॥ दो प्रकार षट् कर्म पालने वाले ॥

शुद्ध षट् कम पालीत, भव्य जीव रतो सदा ।
अशुद्ध षट् कर्म जेना अभव्य जीव न संशया ॥३०८॥

भव्य जीव पालें प्रथम, शुद्ध षट् करम सार ।
हैं अशुद्ध षट् करम तिन, जो अभव्य दुखभार॥३०८॥

॥ द्विविधि पद् कम ॥



अशुद्ध पद् करम प्रोक्त च अशुद्ध अशाश्वत कृत।
शुद्धस्य मुक्ति मार्गस्य, अशुद्धस्य दुर्गते कारण ॥३०६॥



द्विविधि पद् करम जो कहे, शुद्ध मोक्ष पद हेत।
हैं अशुद्ध पद् करम तें, दुरगति दुख पद देत॥३०९॥



॥ अशुद्ध पद् कर्म पालक का दशा ॥



अशुद्ध प्रोक्तश्चैव, देवालि देवपि जानते।
क्षेत्र अनत हिंडते, अदेव देव उच्यते ॥३१०॥



देहल में केवल बसै, बिन जानो हिंडत।
जड़ अदेव बंदै विविधि, अशुभ कर्म पड़ियंत॥३१०॥



॥ मिथ्या दृष्टी के देव ॥

[illegible] मृ[illegible] दृष्टी च, अदेव देव मानते ।
[illegible] मार्गे च, मानते मिथ्या दृष्टिवा॥३११॥

मिथ्या माया मूढ मति, कहे अदेव को देव ।
लोक रूढि मानत कुबुधि ताके दुःख नाहिं छेव॥३११॥

॥ मिथ्या दृष्टी के गुरु ॥

ग्रंथ राग सम्यक्त, कषाय रमते सदा ।
शुद्ध तत्त्व न जानन्ते, ते कुगुरु गुरु मानते ॥३१२॥

ग्रंथ राग सयुक्त हों, हो कषाय में मत्त ।
शुद्ध तत्त्व जाने नहीं, कुगुरु भजें मिच्छत्त ॥३१२॥

॥ मिथ्या दृष्टी के गुरु ॥

मिथ्या माया प्रोक्त च, असत्य सत्य उच्यते।
जिन द्रोही वचन लोपंत, कुगुरु दुर्गति [illegible]

जिन द्रोही मिथ्या मती, कहिं असत्य [illegible]
यों कुगुरु मानत कुधी, गह कुगुरु बिन [illegible]

॥ मिथ्या दृष्टी की क्रिया ॥

अनेक पाठ पठन च, वंदना [illegible]
शुद्ध तत्व न जानन्ते, सामायि[illegible] ॥३२॥

पाठ पढ़ें, बहु वंदना, सामायिक [illegible]।
शुद्ध तत्व जाने नहीं, यह मिथ्[illegible] ॥३२४॥

॥ मिथ्या दृष्टी की क्रिया ॥

संयम प्रगाढ़ जैन, हिंसा जीव निरोधन।
सम्यक् शुद्ध न जानत, तद् संयम मिथ्या संयम ॥३१५॥

हिंसा, जीव निरोध जेह, वह संयम पालत।
मिथ्या दृष्टी जीव बहु, भटकें काल अनन्त ॥३१५॥

॥ मिथ्या दृष्टी का तप ॥

अशुद्ध तप तप्त च, तीव्र उपसर्गं सह।
शुद्ध तत्त्व न पश्यन्ते, मिथ्या माया तप कृत॥३१६॥

तीव्र सहें उपसर्ग वे, करें तपस्या खूब।
शुद्ध तत्त्व जाने नहीं, बिन समकित दुखरूब।३१६।

॥ मिथ्यात्वी का कुदान ॥



दान अशुद्ध दान च, कुपात्र दीयते सदा ।
व्रत भग कृत मूढ़ा, दान ससार कारण ॥३१७॥



मिथ्या दान कुपात्र को, देवे व्रत कर खड ।
मूढ वढावे जगत को, कारण मिथ्या मड ॥३१७॥



॥ मिथ्यात्वी की दशा ॥



जे पद् कम पालन्त मिथ्या अन्यान दिष्टत ।
ते नरा मिथ्यादृष्टी च, समार भ्रमण सदा ॥३१८॥



जे अशुद्ध पद् कर्म को, पालें मिथ्या मूढ ।
ते समार न छोडिहैं, भ्रमण करेंगे मूढ ॥३१८॥



॥ अशुद्ध पट् कर्म ॥

य पट् करम जानन्ते, अनेक विभ्रम कीयते।
मिथ्यात्व गुरु पश्यते, दुर्गति भाजन ते नरा ॥३१९॥

जो जाने पट् कर्म को, कर अनेक भ्रम भाव।
मिथ्या कुगुरु उपासना, करें कुगति उपजाव॥३१९॥

॥ शुद्ध पद कर्म ॥

पट् कम शुद्ध उक्त च, शुद्ध समय शुद्ध ध्रुन।
जिन उक्त पट् कर्म च, केवल दृष्टि सजुत ॥३२०॥

शुद्ध पट् करम यों कहें, जिनवर परम उदार।
शुद्ध समय ध्रुवभाव जंह, तीन लोक में सार॥३२०॥

॥ षट् कर्म के नाम व स्वरूप ॥



देव देवाधि देव च, गुरु ग्रंथ मुक्त सदा।
स्वाध्याय शुद्ध ध्यायन्ति, सजम सजम श्रुत ॥३२१॥



हों जिनवर ही देव जह, गुरु निर्ग्रंथ महंत।
तीजे हो स्वाध्याय वर, संयम धर शिव पथ॥३२१॥



॥ उक्त षट् कर्म में शेष २ कर्म ॥



तप च अप्प सद्भाव, दान पात्र स चिन्तन।
ये षट् कर्म जिन उक्त, सार्धं शुद्ध दृष्टित ॥३२२॥



हो आतम तप लीन जंह, दान पात्र चिन्तौन।
यह षट्कर्म जिनेन्द्र ने, भाषे कर शिव गौन॥३२२॥



॥ देव-स्वरूप ॥

देव च जिन उक्त च, ज्ञान मय अप्प सब्भाव।
अनत चतुष्टय जुत्त, चौदस प्राण सजुत्तो ॥३१

देव जिनेश्वर ज्ञानमय, चौदह प्राण संजोत।
चार चतुष्टय युक्त वह, मानत शिव सुख होत॥३२

॥ निज शुद्धात्माही देव है॥

देवो परमेट्ठि मइओ, लोकालोक विलोकित।
परमप्पा पान मइओ, त अप्पा देह मज्झम्मि॥३३

लोकालोक विलोकतो, परमेष्ठी जिन देव।
तिये, अन्तर अपने देह ॥३४॥

॥ देह में विराजमान देव ॥



देहे दिवलि देव च, उवइट्ठो जिनवरि देह ।
परमेष्ठा सजुत्त, पूज च शुद्ध सम्यक्त ॥ ॥

देवालय यह देह है, देव निजातम शुद्ध ।
परम पूज्य परमेष्ठि वह, कहें जिनेश्वर शुद्ध॥३२५॥



॥ १२ पुज निरूपण ॥

देव गुरु निशुद्ध, अरहन्तसिद्ध आचार्य ।
उवज्झाय साधु गुण, पच गुण पच परमेट्ठी ॥३२६॥

अर्हत्सिद्धाचार्य गुरु, उपाध्याय मुनिराज ।
ये पांचो परमेष्ठि पद, कहूं कथन शुभ काज॥३२६॥

॥ श्री अरहत परमेष्ठी ॥

अ रहा हिय यार, ग्यान मय त्रिभुवनस्य।
॰ चतुष्टय सहिओ, ह्रींकार जाण अरहन्त ॥३२६॥

हिय।र को ध्यान कर, श्री अरहत पिछान।
चा॰ चतुष्टय मय प्रभू, ज्ञानवंत भगवान ॥३२७॥

॥ सिद्ध परमेष्ठी ॥

सिद्ध सिद्ध ध्रुव चिन्ते, ऊवकार च बिन्दवे।
मुक्ति च ऊर्ध सद्भाव, ऊर्ध च शास्वत पद ॥३२८॥

ओंकार के ध्यान से, सिद्ध शुद्ध पहिचान।
ऊर्द्ध लोक शिवपुर वसे, शाश्वत श्री भगवान॥३२८॥

॥ आचार्य परमेष्ठी ॥

आचार्य आचरण शुद्ध, ति अर्थं शुद्ध मारना ।
सर्वज्ञे शुद्ध ध्यानस्य, मिथ्या तिक्त त्रिभेदय ॥२२९॥

आचारज आचार जुत, परमातम लवलीन ।
परम शुद्ध सम्यक्त्व युत, धर्म तीर्थ प्राचीन ॥२२९॥

॥ उपाध्याय परमेष्ठी ॥

उपाध्याय उपयोगेन, उपयोगो लक्षण जुन ।
अग पूर्व च उक्त च, साधै ध्यान मय ध्रुन ॥२३०॥

उपाध्याय मुनिराज यह, पढ़ें पढावें ज्ञान ।
अग पूर्व जाने सुधी, तिन पद प्रति परणाम॥२३०॥

॥ साधु परमेष्ठी ॥

साधु च सर्व साधू च, लोकालोक च शुद्धये ।
रत्नत्रय मय शुद्ध, ति अर्थं साधु जोयते ॥३३१॥

साधु सर्व साधू मुनी, रत्नत्रय साधन्त ।
तारण तरण समर्थ गुरु, शिव सुख देहु तुरत ॥३३१॥

॥ पंच परमपद ॥

देव च पच गुण शुद्ध, पदवी पचामि मयुक्तो ।
देव जिनयानन्तो, साधु शुद्ध दृष्टि समय च ॥३३२॥

पंच परम पद शुद्ध यह, निज २ गुण में लीन ।
समय शुद्ध दृष्टी हमें, देहु नमू पद चीन ॥३३२॥

॥ तीर्थंकर अरहंत ॥



अरहत भावन जेन, षोडस भावेन भावित।
ति अर्थं तीर्थंकर जेन प्रति पूर्ण पच दीप्तय ॥३३३॥



षोडस कारण भाय प्रभु, हो तीर्थंकर देव।
श्री अरहत महन्त वे, तिन पद नमहु सदैव॥३३३॥



॥ सोलह कारण भावना ॥



तत्परन पोडश भाव ति अर्थं तीर्थंकर कृत।
षोडश भावना भाव, अर्हन्त गुण शास्वत ॥३३४॥



षोडस कारण भावना, तीर्थंकर पद दाय।
भावो, श्री अरहत के, शाश्वत गुण सुखदाय॥३३४॥



॥ सिद्ध गुण ॥

सिद्ध च शुद्ध सम्यक्त, न्यान दर्शन दार्शेव।
वीर्यं सुक्ष्म अव्यावि, अवगाहन अगुरुलघुस्तथा ॥३३५॥

समकित,दर्शन,ज्ञानमय, अगुरु लघु, अवगाह।
सूक्ष्म, वीरजवान है, निराबाध गुण चाह॥३३५॥

॥ सिद्ध गुण ॥

सम्यक्त आदि गुण सार्धं, मिथ्या मल विमुक्तय।
सिद्ध गुणस्य सम्पूर्णं, सार्धं भव्य लोकया ॥३३६॥

समकित आदिक गुणनिकी, कर श्रद्धा सम्यक्त्व।
भव्य जीव श्रद्धान से, सिद्ध भाव कर व्यक्त॥३३६॥

॥ आचार्योपाध्याय ॥

आचार्य आचरण धर्मं, ति अर्थं शुद्ध दर्शन ।
उपाध्याय उपदेशान्व, दशलक्षण धर्म ध्रुव ॥३३७॥

आचारज आचरण कर, धर्म तीर्थ प्रगटाय ।
दशलक्षण उपदेश कर, शिव साधें उवझाय॥३३७॥

॥ आचार्योपाध्याय ॥

साधं चेतना भाव, आत्म धर्म च एक य ।
आचार्य उपाध्यायेन, धर्म शुद्ध च धारणा ॥३३८॥

श्रद्धा वस्तु स्वरूप की, आत्म धर्म को ध्यान ।
आचारज उवझाय ते, नमूं नमूं चरणान ॥३३८॥

॥ धर्म ॥

ते परम शुद्ध दृष्टी च, पूजित्त च सदा बुधैः ।
उक्त च जिन देव च, साध्यते भव्य लोकया ॥३३९॥

जिनवाणी उपदेश यह, पढै सुनै भवि लोय ।
शुद्ध दृष्टि सम्यक्त्व की, साधे निज पद सोय ॥३३६॥

॥ साधु परमेष्ठी ॥

साधुओ साधु लोकेन, दर्शन न्यान सजुत ।
चारित्र आचरण जेन, उदय अवश्य शुद्धय ॥३४०॥

साधु सर्व साधू गुरू, दर्शन ज्ञान संजोत ।
करे आचरण चरण शुभ, पावैं अवधि उदोत ॥३४०॥

॥ साधु परमेष्ठी ॥

ऊर्ध्वं अर्धं मध्य च, दिष्टत सम्यक दर्शन ।
न्यान मय च सम्पूर्ण, आचरण सजुत ध्रुव ॥३४१॥

ज्ञानमयी सर्वज्ञ के, कथित तत्व पर ध्यान ।
सर्व साधु गुरु को नमू, सम्यग्दर्शन वान ॥३४१॥



॥ साधु परमेष्ठी ॥

साधु गुण च सम्पूर्ण, रत्नत्रय लंकृत ।
भव्य लोकस्य जीवस्य, रत्नत्रय प्रपूजित ॥३४२॥

परम पूज्य रत्नत्रयी, करि मंडित मुनिराज ।
साधु मूलगुण, वीस वसु, शोभित शुभगुण साज ॥३४२॥



॥ सम्यग्दर्शन ॥

देव गु। पूज्य साधं च, अग सम्यक्त शुद्धये ।
म[illegible] मय शुद्ध, सम्यग्दर्शन मुत्तम ॥२४३॥



देव जिनेश्वर पूजिये, आठ अंग में ध्यान ।
ज्ञान मयी सम्यक्त्व करि, मंडित भव्य महान ॥२४३॥



॥ सम्यग्ज्ञान ॥

न्यान च न्यान शुद्ध च, शुद्ध तत्व प्रकाशक ।
न्यान मय च सशुद्ध, न्यान सर्वज्ञ लोकित ॥२४४॥



सम्यग्ज्ञान स्वरूप लख, तत्व प्रकाशन हार ।
यही ज्ञान सर्वज्ञ के, आतम में अविकार ॥२४४॥

॥ सम्यग्ज्ञान ॥

न्यान आराध्यते जना, पूज्य तत्त्व च वेदन्ते ।
शुद्धस्य पूज्यते लोके, न्यान मय सार्थ ध्रुव ॥३४५॥

आराधन कर ज्ञान को, पूजा अनुभव लाय ।
ज्ञान मयी श्रद्धान कर, यही मोक्ष सदुपाय ॥३४५॥

॥ सम्यग्ज्ञान ॥

न्यान गुण च चत्वारी, श्रुत पूजा सदा बुधै ।
धर्म ध्यान च संयुक्तं, श्रुत पूजा विधीयते ॥३४६॥

चार गुण मयी ज्ञान की, श्रुत पूजा धरि ध्यान ।
चारों ही अनुयोग यह, गुण हैं सम्यग्ज्ञान ॥३४६॥

॥ ४ अनुयोग ॥

प्रथमानुयोग करण, चरण द्रव्यानि बेदन्ते ।
न्यान ति अर्थ सम्पूर्ण, सार्थ पूजा सदा बुधैः ॥३४७॥

प्रथम, चरण, अरु करण हैं, द्रव्य चार अनुयोग ।
ज्ञान तीर्थ है पूजिये, शिव सुख चाह मनोग॥३४७॥

॥ प्रथमानुयोग ॥

प्रथमानुयोग पद बेदन्ते, व्यंजन पद शब्दय ।
तदर्थ पद शुद्ध च, न्यान आत्मान गुण ॥३४८॥

पूज्य पुरुष जीवन कथन, आश्रित शिव मग ज्ञान ।
वही प्रथम अनुयोग है, शब्द ब्रह्म पहिचान॥३४८॥

॥ प्रथमानुयोग ॥

व्यजन च पदार्थं च, शास्वत नाम शुद्धय ।
उवकारस्य वेदन्ते, सार्धं न्यान मय ध्रुव ॥३४९॥

निश्चय में ओंकार का, आत्म कथन जंह होय।
शाश्वतपद अनुयोग वह, जिन भाषित शुभ होय।३४६।

॥ करणानुयोग ॥

करणानुयोग सम्पूर्णं, स्वात्म चिन्ता वुधै ।
स्वस्वरूप च आराध्य, करणानुयोग शास्वत ॥३५०॥

आत्म कथन चिन्तन जहां, निज स्वरूप पहिचान ।
होवे, वह अनुयोग है, करण नाम, शुभज्ञान ॥३५०॥

॥ करणानुयोग ॥

शुद्धात्मा चेतना नित्य, ऊर्व ह्रिय श्रिय पद ।
पंच दिप्ति मय शुद्ध, शुद्ध च शुद्धात्मन ॥३५१॥

पच दिप्ति ओंकार पद, ह्रीं पद श्री पद ज्ञान ।
शुद्धात्मा चिन्तन कथन, यह अनुयोग महान ॥३५१॥

॥ करणानुयोग ॥

शल्य मिथ्या मय त्यक्त, कुन्यान त्रिविधि त्यक्तय ।
ऊर्धं च ऊर्ध सद्भाव, ऊर्वकार च वन्दते ॥३५२॥

शल्य तीन हों दूर जब, मिथ्या ज्ञान नशाय ।
ओंकार अनुभव वंदे, यह अनुयोग वशाय ॥३५२॥

॥ करणानुयोग ॥



द्रव्य दृष्टी च सम्पूर्णं, शुद्ध सम्यक्दर्शन ।
न्यान मय सार्धं शुद्ध, करणानुयोग स्वात्मचिंतन ॥३५३॥



द्रव्य दृष्टि की पूर्णता, सम्यग्दर्शन ज्ञान ।
आत्मचिंतवन करणवह, शुभ अनुयोग विधान।३५३।



॥ चरणानुयोग ॥



चरणानुयोग चारित्र, चिद्रूप रूप दृष्टत ।
ऊर्ध्वं अधो मध्यम च, सम्पूर्णं न्यान मय ग्रु ॥३५४॥



मुनि श्रावक चारित्र को, होवे जंह व्याख्यान ।
निजस्वरूपपहिचानजंह, वह शुभ आगमज्ञान।३५४।



॥ चरणानुयोग ॥

पद कमल त्रैलोक च, सार्घ शुद्ध धर्म सयुत ।
चिद्रूप दिष्टत जेन, चरण पच दिप्तय ॥३५५॥

पच दिसि पद कमल जो, तीनि लोक में सार ।
वही चरण अनुयोग है, शुद्ध स्वरूप विचार ॥३५५॥

॥ द्रव्यानुयोग ॥

द्रव्यानुयाग उत्पाद्यन्ते, द्रव्य दृष्टी च सयुत ।
अनन्तानन्त दिष्टन्ते, स्वात्मान व्यक्त रूपय ॥३५६॥

द्रव्य दृष्टि सयुक्त शुभ, है द्रव्यानूयोग ।
व्यक्तरूप निज आतमको, कहैं अनत सुयोग ॥३५६॥

॥ द्रव्यानुयोग ॥

दिव्य दिव्य दृष्टी च, सन्नन्य शास्वत पद ।
अनन्तानन्त चतुष्ट च, केवल पद ध्रुव ॥३५७॥

चार चतुष्टय वत प्रभु, केवल ज्ञानी वीर ।
द्रव्यदृष्टि तिन शुभ कही, जो अनत गुणधीर॥३५७॥

॥ द्रव्यानुयोग ॥

चतुर गुण च जामन्ते, पूजा वेदन्त ज बुधे ।
ससार भ्रमण मुक्तस्य, स्वय मुक्ति गामिनो ॥३५८॥

चार सघ जाने जहा, पूजा अनुभव ज्ञान ।
शिव मारग है शुद्ध वह, द्रव्यनुयोग महान ॥३५८॥

॥ श्री सम्यग्दर्शन ॥



श्रिय मम्यग्दशन च, मम्यग्दर्शन मुत्तम ।
म०यक्त सम्पूर्ण शुद्ध ति अर्थे पच दीप्तय ॥३५६॥



जह मम्यग्दर्शन उदय, तह सब शुद्ध विचार ।
तीर्थ शुद्ध है शुभ यही, पच दिप्ति मय सार ॥३५६॥



॥ सम्यग्दशन ॥



श्रिय सम्यक्दशन शुद्ध, श्रिय कारेण उत्पद्यते ।
सर्व ज्ञान मय शुद्ध श्रिय सम्यग्दर्शन ॥३६०॥



श्री सम्यग्दर्शन यही, जिनवर कहे महान ।
मोक्ष महल सोपान यह, भव्य कराहँ पहिचान ॥३६०॥



॥ सम्यग्ज्ञान ॥

न्यान च सम्यक्त शुद्ध, सम्पूर्णं त्रैलोक्य धुवम ।
सर्वं ज्ञान मय शुद्ध, पद् मन्य केवल धुव ॥३६१॥

भलोशुद्ध,सम्यक्त्वयुत, तीन लोक में मार ।
जो जानै, सर्वज्ञ पद, पावैं ज्ञान उदार ॥३६१॥

॥ सम्यग्ज्ञान ॥

श्रिय सम्यक् न्यान च, श्रिय सर्वन्य शास्वत ।
लोकालोक मय रूप, श्री सम्यक् न्यान उच्यते॥३६२॥

लोका लोक प्रकाशतो, श्री सम्यक वर ज्ञान ।
निजआतमहित चाहतो, जिन आगमपहिचान।३६२।

॥ श्री सम्यक् चारित्र ॥

श्रिय सम्यक् चारित्र, सम्यक उत्पन्न शास्वता।
अप्पा परमप्पया शुद्ध श्री सम्यक् चरण सुधे ॥२६३॥

आतम हो शुद्धातमा, सम्यक चारित पाय।
शिव मारग है शुद्ध यह, गहे परम पद दाय ॥२६३॥

॥ सम्यक् चारित्र ॥

श्रिय सर्वन्य शुद्ध च, स्वरूप व्यक्त रूपय।
श्रिय सम्यक् ध्रुव शुद्ध, श्री सम्यक् चरण सुधे ॥२६४॥

यह सम्यक्चारित्र है, ध्रुव शिव सुख को पंथ।
निज स्वरूपको व्यक्तकर, करै जगत को अंत॥२६४॥

॥ सम्यक्चारित्र ॥

पचहत्तर गुण वेदन्ते, सार्धं च शुद्ध ध्रुव।
पूनित सस्तुत जेन, भव्य जन शुद्ध दृष्टि ॥३६५॥

पचहत्तर गुण अनुभवै, वस्तु स्वरूप विचार।
भव्यजीव पूजे करै, श्रद्धा, स्तुति जिनसार ॥३६५॥

॥ सम्यक्चारित्र फल ॥

एतद् गुण सार्धं च, स्वात्म चिंता सदा बुधै।
देव तस्य पूजन्ते, मुक्ति गमन न संशया ॥३६६॥

देव करैं पूजा वही, मोक्ष हु निःसन्देह।
जोवे जो चारित्र को, निर्मल पाले नेह ॥३६६॥

॥ गुरु प्रशंसा ॥

गुरुस्य ग्रंथ मुक्तस्य, राग दोष न चिन्तये ।
रत्नत्रय मय शुद्ध, मिथ्या माया विमुक्तय ॥३६७॥

गुरु निर्ग्रंथ महंत वे, राग द्वेष कर हीन ।
रत्नत्रय मय शुद्ध अति, नित्य निजातम लीन ॥३६७॥

॥ गुरु-प्रशंसा ॥

गुरु त्रैलोक वेदन्ते, ध्यान धर्म च संजुत ।
तद्गुरु सार्धं नित्य, रत्नत्रय लंकृत ॥३६८॥

धर्म ध्यान संयुक्त प्रभु, रत्नत्रय शिव पंथ ।
तारणतरण समर्थ तिन, सरधौ सम्यकवन्त ॥३६८॥

॥ स्वाध्याय ॥

स्वाध्याय शुद्ध ध्रुव चिन्त्ये, शुद्ध तत्व प्रकाशक ।
शुद्ध सम्पूर्ण दृष्टी च न्यान मय सार्धं ध्रुव ॥३६९॥

निर्मल शुभ स्वाध्याय यह, तत्व ज्ञान को देय ।
ज्ञान मयी श्रद्धान कर, निजानद सुख लेय॥३६९॥

॥ स्वाध्याय का प्रत्यक्ष लाभ ॥

स्वाध्याय शुद्ध चित्तस्य, मन वचन काय निरोधय ।
त्रैलोक ति अर्थ शुद्ध, अस्थिर शास्वत ध्रुव ॥३७०॥

मन की गति शुभ होत है, वचन काय वश होय ।
तीन लोक में सार यह, तीर्थ, शास्त्र पद जोय ।३७०।

॥ संयम ॥

संयम संयम कृत्वा, संयम द्विविधि भवेत् ।
इन्द्रियाना मनोनाथ, रक्षण त्रस थावर ॥३७१॥

संयम पालो द्विविधि यह, इन्द्रिय संयम प्राण ।
त्रस थावर की जतन कर, मन इन्द्रिय वशआन।३७१।

॥ संयम ॥

संयम संयम शुद्ध, शुद्ध तत्त्व प्रकाशक ।
तीर्थं ज्ञान जल शुद्ध, सुस्नान सजम धुर ॥३७२॥

तबहि तत्त्व प्रकाश जब, निर्मल संयम होय ।
तीर्थ ज्ञान मय जल यही, न्हवन करो भविलोय।३७२।

॥ तपस्वरूप ॥

तपश्च अप्प सद्भाव, शुद्ध तत्व सुचिन्तन ।
शुद्ध ज्ञान मय शुद्ध, तथाहि निमल तप' ॥३७३॥

आत्म चिंतवन हो जहा, हो इच्छा को रोध ।
निर्मल तप यह ज्ञानमय, ज्ञानी कर मन शोध॥३७३॥

॥ दान स्वरूप ॥

दान पात्र चिन्तस्य, शुद्ध तत्व रतो सदा ॥
शुद्ध धर्म रतो भाव, पात्र चिंता दान सयुत ॥३७४॥

जैन धर्म निज तत्त्व में, रुचि कर कीजे दान ।
उत्तम मध्यम जघन्य इन, पात्रनि को कर मान॥३७४॥

॥ शुद्ध पद् कर्म ॥



य पद कर्म शुद्ध च, ये नाधन्ति मदा बुधै ।
शुद्ध धर्म रतो भाव, पा॰ चिता दान सजुत ॥३७५॥



उपर्युक्त पट कर्म जो, कहे मोक्ष पद हेत ।
धर्म ध्यान रत जीव नित, करो,यही, सुख देत॥३७५॥



॥ शुद्ध षट् कर्म ॥



षट् कर्म च आराध्य, अव्रत श्रावक श्रुन ।
ससार शरण मुक्तस्य, मोक्ष गामी न सशया ॥३७६॥



अविरत सम्यग्दृष्टि हू, आराधें षट् कर्म ।
शिव सुख लें संशय नहीं, पालन कर तज भर्म।३७६।



॥ षट् कर्म ॥

एतत् भावन कृत्वा, श्रावक सम्यग् दृष्टित ।
अव्रत शुद्ध दृष्टी च, सार्धं न्यान मय ध्रुव ॥३७७॥

अविरत सम्यग्दृष्टि यह, श्रावक श्रद्धावान ।
भाव धरें षट् कर्म के, पावें क्रम २ ज्ञान ॥३७७॥

॥ ग्यारह प्रतिमा कथन ॥

श्रावक धर्म उपावन्ते, आचरण उत्कृष्ट सदा ।
प्रतिमा एकादश प्रोक्त, पच अणुव्रत शुद्धये ॥३७८॥

परम पूज्य आचार्य वर, कहें श्रावकाचार ।
प्रतिमा ग्यारह को कथन, श्रावक अणुव्रत सार।३७८।

॥ ११ प्रतिमा नाम ॥

दसण वय सामाइक, पोषइ साचिन्त चितन ।
अनुराग बभचय, आरम्भ परिग्रहस्तथा ॥३७९॥

दर्शन व्रत सामायिकी, प्रोषध त्याग सचित्त ।
अनुरागी हो ब्रम्हचर, तज अरभ संग नित्त॥३७९॥

॥ ग्यारह प्रतिमा नाम ॥

अनुमति उद्दिष्ट दिष्ट च, प्रतिमा एकादशानि च ।
नवानि पच उसाधते, श्रूवते जिनागम ॥३८०॥

दशमी अनुमति त्याग है, ग्यारोदिष्ट अहार ।
त्याग भाव मन में धरो, ग्यारह व्रत जिनसार॥३८०॥

॥ ४ अणुव्रत नाम ॥

आहिंसा अनृतं जेन, स्तेय पच परिग्रह।
शुद्ध तत्त्व हृदय चिंत्ये, सार्धं न्यान मय ध्रुव ॥३८७॥

धार अहिंसा सत्य यह, हैं अचौर्य व्रत सार।
ब्रम्हचर्य पालो सुधी, परिग्रह थोडो भार ॥३८७॥

॥ पहली दर्शन प्रतिमा ॥

प्रतिमा उसाधत जेन, दर्शन शुद्ध [illegible]।
ऊनकार च वेदन्ते, मल [illegible] ॥३८८॥

ओंकार परमेष्ठि की, भक्ति [illegible]।
दर्शन प्रतिमा कहत हैं, मल [illegible] ॥३८८॥

॥ तीन मूढ़ता त्याग (लोक मूढ़ता) ॥

मूढ भय उत्पाद्यते, लोक मूढ न दृष्टते।
जतानि मूढ दृष्टि च, तेतानि दृष्टि न दीयते ॥३८३॥

तीन मूढता जगत में, प्रथम लोक है मूढ।
देखादेखी मति करो, हो विवेक आरूढ ॥३८३॥

॥ देव मूढता ॥

लोक मूढ देव मूढ च, अनृत अचेत दिष्टते।
तिक्तते शुद्ध दृष्टी च, शुद्ध सम्यक रतो सदा ॥३८४॥

मूढ लोक जड़ देव को, देखा देखी मान।
देव मूढ़ता में पड़े, तजिये सम्यक्वान ॥३८४॥

॥ सम्यक्त्व बिना सब व्यर्थ ॥

अनेक पाठ पठन्ते, अनेक क्रिया संयुत ।
दर्शन शुद्ध न जानन्ते, वृथा दान अनेक धा ॥ ३९९ ॥

पाठ पढ़ो सब भांति के, क्रिया अनेकानेक ।
दर्शन शुद्ध न होय तो, वृथा सकल दुख खेद ॥३९९॥

॥ सम्यकदर्शन ॥

दर्शन जस्य हृदय दृष्टी सुय न्यान उत्पाद्यन्ते ।
कमठी दृष्टी यथा अंड, स्वयं वर्धन्ति य गुणै ॥४००॥

ज्यों वृक्षन के निकट बहु, तृण गण बढत स्वमेव ।
त्यों सम्यग्दर्शन जहा, तह गुण सब स्वयमेव॥४००॥

॥ सम्यग्दृष्टि आचार्य हो ॥

आज्ञा वेदकश्चैव, पदवी द्वितीय आचार्य ।
ध्यान मती श्रुत चिन्तै, धर्म ध्यान रतो सदा ॥३९७॥

आज्ञा, वेदक दोय की, पदवी लेजो सार ।
मतिश्रुत ज्ञानी ध्यान मय, भव्य वही आचार ॥३९७॥

॥ सम्यग्दर्शन बिना सब व्यर्थ है ॥

अनेय व्रत कर्तव्य, तप संजम च धारण ।
दर्शन शुद्ध न जानन्ते, वृथा सकल विभ्रम ॥३९८॥

व्रत अनेक कर लीजिये, तप सयम धर लेहु ।
दर्शन शुद्ध न होय तो, वृथा सकल गिन लेहु ॥३९८॥

॥ सम्यग्दृष्टि ॥

सम्यग्दर्शन शुद्ध, ऊंकार च वन्दते ।
धर्मध्यान च उत्पाद्यते, ह्रियंकार च दृष्टे ॥ ३९५ ॥

ओंकार ह्रींकार को, समुझे सम्यकवान ।
धर्म ध्यान को धारतो, पावै सम्यकज्ञान ॥३९५॥

॥ सम्यग्दृष्टि ॥

ऊंकार च ह्रियंकार च, श्रीयंकार च प्रतिपूर्णत ।
ध्यान च शुद्ध ध्यानस्य, अणुव्रत च सार्व ध्रुव ॥३९६॥

अणुव्रती वह समकिती, ध्यावे ओं ह्रींकार ।
श्रियंकार समुझै वही, ज्ञान रत्न भंडार ॥३९६॥

॥ सम्यग्दृष्टि आचार्य हा ॥

आज्ञा वेदकश्चैव, पदवी द्वितिय आचार्य ।
ध्यान मती श्रुत चिन्ते, धर्म ध्यान रतो सदा ॥३६७॥

आज्ञा, वेदक दोय की, पदवी लेजो सार ।
मतिश्रुत ज्ञानी ध्यान मय, भव्य वही आचार ॥३६७॥

॥ सम्यग्दर्शन विना सब व्यर्थ है ॥

अनेय व्रत कर्तव्य, तप सजम च धारण ।
दर्शन शुद्ध न जानन्ते, वृथा सकल विभ्रम ॥३६८॥

व्रत अनेक कर लीजिये, तप सयम धर लेहु ।
दर्शन शुद्ध न होय तो, वृथा सकल गिन लेहु ॥३६८॥

॥ सम्यग्दृष्टि ॥

सम्यग्दर्शन शुद्ध, ऊवकार च वर्त्तते ।
धर्म ध्यान च उत्पादजे, ह्रियकार च वर्त्तते ॥ २६५ ॥

ओंकार ह्रींकार को, समुझे सम्यक्वान ।
धर्म ध्यान को ध्यावतो, पावै सम्यक्ज्ञान ॥२६५॥

॥ सम्यग्दृष्टि ॥

ऊवकार च ह्रियकार च, श्रीयकार च भावपूर्णव ।
ध्यान च शुद्ध ध्यानस्य, अणुव्रत च सार्व ध्रुव ॥२६६॥

अणुव्रती वह समकिती, ध्यावे ओं ह्रींकार ।
श्रियंकार समुझै वही, ज्ञान रत्न भंडार ॥२६६॥

॥ सम्यग्दृष्टि आचार्य हो ॥

आज्ञा वेदकश्चैव, पदवी द्वितिय आचार्य ।
न्यान मती श्रुत चिन्ते, धर्म ध्यान रतो सदा ॥३६७॥

आज्ञा, वेदक दोय की, पदवी लेजो सार ।
मतिश्रुत ज्ञानी ध्यान मय, भव्य वही आचार ॥३६७॥

॥ सम्यग्दर्शन बिना सब व्यर्थ है ॥

अनेय व्रत कर्तव्य, तप संजम च धारण ।
दर्शन शुद्ध न जानन्त, वृथा सकल विभ्रम ॥३६८॥

व्रत अनेक कर लीजिये, तप संयम धर लेहु ।
दर्शन शुद्ध न होय तो, वृथा सकल गिन लेहु ॥३६८॥

॥ सम्यग्दृष्टि ॥



सम्यग्दर्शन शुद्ध, मिथ्या कुज्ञान विलीयते ।
शुद्ध समय च उत्पायते, रजनी उदय भास्कर ॥३९३॥



ज्यों रवि उदित, पलाय निशि, तैसे मिथ्याज्ञान ।
सम्यग्दर्शन तें भगे, कहत जिनेश्वर ज्ञान ॥३९३॥



॥ सम्यग्दर्शन ॥



दर्शन तत्त्व सार्धे च, तत्त्व नित्य प्रकाशक ।
न्यान तत्त्व वेदन्ते, दर्शन तत्त्व सार्धय ॥ ३९४ ॥



सम्यग्दर्शन ज्ञान मय, तत्त्व प्रकाशक हेय ।
भव्य जीव श्रद्धान कर, गहो दूर तज भेय ॥३९४॥



॥ निर्मल सम्यक्त्व ॥

...क दर्शन शुद्ध, आराध्यते बुधजनै ।
...ज्ञ शुद्धं च ज्ञान चारित्र संयुत ॥३६१॥

...निर्मल सम्यक्त्व जंह, आराधन में आय ।
...ज्ञान तंह स्वयं ही, सम्यक रूप लहाय ॥३६१॥

॥ सम्यग्दृष्टि ॥

दर्शनं यस्य हृदय साधे, दोष तस्य न पश्यते ।
विनाश सकल जानन्ते, स्वप्ने तस्य न दृश्यते ॥३६२॥

सम्यग्दृष्टी स्वप्न में हूं — नांहि दोष लगाय ।
निर्मल सम्यग्दर्श को, हृदय बीच पधराय ॥३६२॥

॥ आठमद - आठदोष ॥

मदाष्ट शङ्कादि अष्ट च, तिक्ते भव्य आत्मन् ।
शुद्ध पद ध्रुव सार्थं, दर्शन मल विमुक्तय ॥३८९॥

आठ महामद त्यागिये, आठ दोष निरवार ।
भव्य जीव निर्मळ बनो, सम्यग्दर्शन सार ॥३८९॥

॥ कुसंगति ॥

जे के वि मल सम्पूर्ण, कुज्ञान त्रि रतो सदा ।
एतानि संग त्यक्तान्ति, न क्किंचिदपि चिंतए ॥३९०॥

पच्चिस मल संयुक्त जो, त्रय कुज्ञान सहीत ।
तिनकी संगति त्यागिये, जो हित चाहो मीत॥३९०॥

॥ षद् अनायतन में कुशास्त्र ॥



कुशास्त्र विकहा राग च, त्यक्ते शुद्ध दृष्टित ।
कुशास्त्र राग अदन्ते, अवम नरय पत ॥३८७॥



हैं कुशास्त्र विकथा भरे, त्यागो भव्य महन्त ।
जो अभव्य त्यागें नहीं, जावें नरक पड़न्त ॥३८७॥



॥ छह अनायतन ॥



अन्यानी मिथ्या मयुक्त, तिक्ते शुद्ध दृष्टित ।
शुद्धात्मा चेतना रूप, साधं न्यान मय ध्रुव॥ ३८८॥



मिथ्या युत षड्नायतन, त्यागें सम्यकवन्त !
निजानन्द विज्ञान पद, भावें गहं शिवपन्थ ॥३८८॥



॥ पाखंडि-मूढता ॥



पाखंडी मूढ उक्त च, अशास्वत असत्य उच्यते ।
अधर्म प्रोक्त जेन, कुलिंगी पाखंड त्यक्तय ॥३८५॥



पाखंडी गुरु त्यागिये, त्यागो लिंग कुभेष ।
तज अधर्म, शाश्वत भजो, यह जिनधर्म विशेष॥३८५॥



॥ छह-अनायतन ॥



अन्यान षट्कश्चैव, तिक्तते जे विचक्षणा ।
कुदेव कुदेव धारी च, कुलिंगी कुलिंग मान्यत ॥३८६॥



कुगुरु, कुदेव, कुशास्त्र अरु, इनके माननहार ।
तिनको नाहिं सराहिये, तज अनायतन भार॥३८६॥



॥ सम्यग्दर्शन ॥

दर्शन जस्य हृदय शुद्ध   सुय न्यान च सभवे ।
मच्छिका अंड जथा रेहे,   स्वय वर्धन्ति य वुधे ॥४०१॥

मछली जंह अंडा धरै, राखै नित तंह ध्यान ।
त्यों सम्यग्दृष्टी पुरुष, निज में हों इक तान॥४०१॥

॥ मिथ्यादृष्टी ॥

दर्शन हीन तप कृत्वा,   व्रत सजम च धारणा ।
चपलता हींडि ससारे,   जल सरणि वालु श्रिका॥४०२॥

ताल कीट जल सैनि ज्यों, जल में जीवन खोय ।
त्यों मिथ्यामत सयमी, हींडे भव भव सोय॥४०२॥

॥ सम्यग्दर्शन ॥

दर्शन अस्थिर जेना, न्यान चरण अस्थिर ।
समारे तिक्त मोहन्च, मुक्ति स्थिर सदा भवेत् ॥४०३॥

सम्यग्दर्शन दृढ भयो, ज्ञान चरण दृढ होय ।
त्यागे वह संसार जो, मोह मुक्ति पद दोय ॥४०३॥

॥ सम्यग्दर्शन ॥

एतात दर्शन दृष्टा, न्यान चरण शुद्धपे ।
उत्कृष्ट मत शुद्ध, मोक्ष गामी न सशया ॥४०४॥

यह सम्यग्दर्शन कह्यो, ज्ञान चरण उत्कृष्ट ।
जे पालें ते ही करें, शिव रमणी आकृष्ट॥४०४॥

॥ दूसरी व्रत प्रतिमा ॥



दर्शन सार्धं जस्य, व्रत तप नेम सजुत।
सार्धं शुद्ध तत्त्वार्थं च, स्वात्मा दर्शन दर्शन ॥४०५॥



व्रत तप तिनके सफल हैं, जो सम्यक दृष्टीय।
द्वादस व्रत निर्मल सदा, पाले व्रत धारीय ॥४०५॥



॥ तीसरी सामायिक प्रतिमा ॥



सामायिक कृत जेन, मम सम्पूर्ण सार्धय।
ऊर्ध्व च अधो मध्य च, मन रोधो स्वात्म चिन्तनं॥४०६॥



सामायिक यह तीसरी, प्रतिमा कर श्रद्धान।
मन को वश में कीजिये, तब होवे निज ज्ञान॥४०६॥



॥ सामायिक - प्रतिमा ॥



आहार भोजन गच्छ, श्रुतं शोक च विभ्रम ।
मनो वचन काय हृदय शुद्ध, सामाई स्वात्म चिन्तन ॥४०७॥



वचन, गमन, भोजन करत, और सकल व्यवहार ।
समतायुत वरताव कर, यह सामायिक सार॥४०७॥



॥ चौथी प्रोषध प्रतिमा ॥



पोषह प्रोषधश्चैव, उपवास जैन कीयत ।
सम्यक्त जस्य शुद्ध च, उपवास तस्य उच्यते ॥४०८॥



आठें, चौदस जो धरें, अनशन, व्रत, उपवास ।
सम्यकदर्शन युक्त हो, तिनको निज अभ्यास॥४०८॥



॥ प्रोषध में कर्तव्य ॥

ससार विचराति जेना, शुद्ध तत्व च साधय ।
शुद्ध दृष्टी स्थिरी भूत उपवास तस्य उच्यते॥४०९॥

जग से हो वैराग्य दृढ़, शुद्ध तत्त्व श्रद्धान ।
सो निरोध इच्छा करै, वह प्रोषध व्रत वान॥४०९॥

॥ प्रोषध में कर्तव्य ॥

उपवास इच्छन कृत्वा, जिन उक्त इच्छन यथा ।
भक्ति पूर्वे च इच्छान्ति, तस्य हृदये समाचेरत्॥४१०॥

ज्यों जिनवर को कथन है, त्यों इच्छा मन लाव ।
भक्ति सहित उपवास यह, मन इच्छित फल पाव।४१०।

॥ प्रोषध में कर्तव्य ॥

उपवास व्रत शुद्ध, शेष ससार विक्रय।
पीछन्तो त्यक्त आहार, अनशन उपवास उच्यते ॥४११॥

जग के सब व्यवहार तज, अनशन में निज ध्यान।
वही सफल उपवास है, कहै जिनेश्वर ज्ञान ॥४११॥

॥ प्रोषध का फल ॥

उपवास फल प्रोक्त, मुक्ति मार्ग च निश्चय।
ससार दु ख नाशति उपवास शुद्ध फल प्रद ॥४१२॥

प्रोषध का फल मुक्ति है, है निश्चय दुखनाश।
प्रोषध प्रतिमा शुद्ध यह, धारण कर विश्वास॥४१२॥

॥ प्रोषध सफल कब है ॥

सम्यक्त बिना व्रत येन, तप अनादि कालय ।
उपवास मास पोष च, ससारे दुःख दारुण ॥४१३॥

पक्ष मास उपवास कर बिन समकित है खेद ।
तातैं सम्यक दर्श युत, प्रोषध कर निज भेद॥४१३॥

॥ प्रोषध प्रतिमा (उपसहार) ॥

उपवास एक शुद्ध च, मन शुद्ध तप सार्थयं ।
मुक्ति श्रिय पथ येन, प्राप्त नाम संशय ॥४१४॥

एकहु हो उपवास पर, समकित युत हो शुद्ध ।
मन पवित्र हो तव मिलै, मुक्तिपंथ अविरुद्ध ॥४१४॥

॥ पांचवी सचित्त त्याग प्रतिमा ॥

सचित्त चिन्तन कृत्वा, चेतयन्ति सदा बुधैः ।
अचत असत्य त्यक्तते, सचित्त प्रतिमा उच्यते ॥४१५॥

चिदानन्द चिंतन चँहे, तो सचित्त को त्याग ।
हरी वस्तु प्रासूक कर, तज जड़ सों अनुराग॥४१५॥

॥ सचित्त त्याग प्रतिमा ॥

सचित्त हरित जेन, त्यक्तते न विरोधन ।
सचित्त वस्तु सम्मूर्छन च, त्यक्तन्ति सदा बुधैं ॥४१६॥

सन्मूर्छन युत हरित जो, वस्तु होय सचित्त ।
त्याग ताहि, मनमें दया, लखो चित्तसु पवित्र॥४१६॥

॥ सचित्त त्याग प्रतिमा ॥

सचित्त हरित तिक्तं च, अचित्त सार्व च त्यक्तय ।
मचेत चेतना भाव, सचित्त प्रतिमा सदा बुधै ॥४१६॥

हरी सचित्तहिं त्यागकर, तज जड़ को श्रद्धान ।
चिदानन्द चैतन्य मय, शुभ प्रतिमा यह मान॥४१७॥

॥ छटवीं अनुराग प्रतिमा (रात्रि भुक्त त्याग) ॥

अनुराग भक्ति दृष्टं च, राग द्वेष न दिष्टते ।
मिथ्या कुन्यान तिक्त च, अनुराग तत्र उच्यते ॥४१८॥

निज में हो अनुराग जंह, रागद्वेष हो दूर ।
सम्यग्ज्ञान स्वरूप रस, में अनुरागी पूर॥४१८॥

॥ अनुराग प्रतिमा ॥

शुद्ध तत्त्व च आराध्य, असत्य तस्य त्यक्तय ।
मिथ्या शल्य विनिर्मुक्त, अनुराग भक्ति मार्धय ॥४१८॥

भक्ति सहित अनुराग हो, निज गुण में लवलीन ।
सत्य भाव पहिचान जह, होवें शल्य विहीन॥४१६॥

॥ सातवीं ब्रह्मचर्य प्रतिमा ॥

बम अबम त्यक्त च, शुद्ध दृष्टि रतो मदा ।
शुद्ध दर्शन सम शुद्ध अवभ त्यक्त निश्चय ॥४१९ ॥

त्याग भाव अब्रह्म के, ब्रह्म भाव पहिचान ।
शुद्ध दृष्टि निश्चय लखो, ब्रह्मचर्य व्रतवान ॥४२०॥

॥ ब्रह्मचर्य प्रतिमा ॥

यस्य चित्त ध्रुव निश्चय, ऊर्द्ध अधो च मध्यम ।
जस्य चित्त न रागादि, प्रपंच तस्य न पश्यते ॥४२१॥

राग भाव मन तें तजो, तज प्रपंच कुभाव ।
तीन लोक में सार यह, ब्रह्मचर्य व्रतभाव ॥४२१॥

॥ ब्रह्मचर्य प्रतिमा ॥

विकहा व्यसन उक्त च, चक्र धरणेन्द्र इन्द्रय ।
नरेन्द्र ;विभ्रम . रूप, वर्णत विकहा उच्यते ॥४२२॥

इन्द्र, चक्रि, नरपति, फणी, तिनको रूप विलास ।
वहभी विकथा त्याग भवि, ब्रह्मचर्य अभिलाष॥४२२॥

॥ ब्रह्मचर्य प्रतिमा ॥

व्रत भग राग चिन्तते, विकहा मिथ्यात रंजित ।
अब्रह्म त्यक्त नम च, बंभ प्रतिमा स उच्यते ॥४२३॥

हो व्रत खंडन राग तें, विकथा तें मिथ्यात ।
ब्रह्मचर्य प्रतिमा गहो, कर अब्रह्म को त्याग॥४२३॥

॥ ब्रह्मचारी ॥

यदि बंभचारिनो जीना, भाव शुद्ध न दिश्यते ।
विकहा राग रंजते, प्रतिमा बंभ गत पुन ॥४२४॥

ब्रह्मचर्य धारी भये, भाव शुद्ध ना होय ।
विकथा रागी जीव बहु, सहे दुख व्रत खोय ॥४२४॥

॥ ब्रह्मचर्य प्रतिमा ॥

चित्त निरोधते जेना, शुद्ध तत्त्व च सार्थय।
तस्य ध्यान स्थिरी भूत, वम प्रतिमा स उच्यते॥७२५॥

शुद्ध तत्त्व श्रद्धान कर, चित्त निरोधै जोय।
वही ध्यान थिर करत हैं, ब्रह्म प्रतिज्ञा सोय॥४२५॥

॥ आठवीं आरम्भ त्याग प्रतिमा ॥

आरम्भे मन परसस्य दिष्ट अदिष्ट सकुल।
निरोधन च कृत येन, शुद्ध भाव च संयुतं॥४२६॥

मन उलझै आरम्भ में, हों प्रमाद-युतभाव।
यातें त्याग अरंभ को, करहु शुद्ध निजभाव॥४२६॥

॥ आरम्भ त्याग ॥

अनृत अचेत साधे च आरम जेन क्रीयते ।
जिन उक्त न दिष्टन्ते, जिन द्रोही मिथ्या तत्परा ॥४२७॥

जड़ असत्य में जो करे, नित आरंभ नवीन ।
जिनवाणी ते ना लखें, मिथ्या तप में लीन ॥४२७॥

॥ आरम्भ त्याग प्रतिमा ॥

अदेव अगुरु यस्य, अधर्मं क्रियते सदा ।
विश्वास जेन जीवस्य, दुर्गति दुःख भाजन ॥४२८॥

अगुरु, अदेव, अधर्म को, कर विश्वास महान ।
दुर्गति दुख भाजन बने, जीव महा अज्ञान ॥४२८॥

॥ आरंभ त्याग प्रतिमा ॥

आरम परिग्रह घ्रता, अनन्तानन्त चिन्तए ।
ते नरा ज्ञान हीनस्य, दुर्गति पतन न सशया ॥४२९॥

आरंभी परिग्रह रखे, लखै कुभाव अनन्त ।
ज्ञान हीन दुर्गति परे, करै न दुख को अंत ॥४२६॥

॥ आरम्भ त्याग प्रतिमा ॥

आरम्भ शुद्ध दृष्टि च, सम्यक्त शुद्ध ध्रुव ।
दर्शन न्यान चारित्र, आरम शुद्ध शास्वत ॥४३०॥

करो शुद्ध आरंभ यह, सम्यग्दर्शन ज्ञान ।
सम्यक्चारित पालिय, यह आरम्भ महान ॥४३०॥

॥ आरम त्याग प्रतिमा ॥

आरम शुद्ध तत्व च, ससार दु ख तिक्रय ।
मोक्ष मार्गं च दिष्ट च, प्राप्त शास्वत पद ॥ ४३१ ॥

शुद्ध तत्व में कर सदा, शुभ आरभ विचार ।
मोक्ष मार्ग तब ही लखे, होय अन्त ससार ॥४३१॥

॥ नवमी परिग्रह त्याग प्रतिमा ॥

परिग्रह पर पुद्गलार्थं च, परिग्रह न चिन्तये ।
ग्रहण दर्शन शुद्ध, परिग्रह न विदिष्टते ॥४३२॥

पर, पुद्गल परिग्रह तजो, तज चिंता परभाव ।
सम्यन्दर्शन ग्रहण कर, यह परिग्रह शुभ आव॥४३२॥

॥ दशमी अनुमति त्याग प्रतिमा ॥



अनुमतिं न दातव्य, मिथ्या रागादि देशन ।
अहिंसा भाव शुद्धस्य, अनुमतिं न चिन्तय ॥४३३॥



अनुमति नहिं दीजै तहां, जंह मिथ्या हो राग ।
करो न व्रत विराधना, यह अनुमति को त्याग।४३३।



॥ ग्यारहवीं उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा ॥



उद्दिष्ट उत्कृष्ट भावेन, दर्शन न्यान सयुत ।
चरणस्य शुद्ध भावन, उद्दिष्ट आहार शुद्धये ॥४३४॥



दर्शन, ज्ञान, चारित्र मय, हो उतकृष्ट स्वभाव ।
भोजन अपने निमित्त को, बनो न लेने जाव ॥४३४॥



॥ उद्दिष्ट त्याग ॥

अन्तराय मन कृत्वा, वचन काय उच्यते ।
मन शुद्ध वच शुद्ध च, उद्दिष्ट आहार शुद्धये ॥४३५॥

अन्तराय भोजन समय, त्यागै मन, वच, काय ।
तब उद्दिष्ट अहार को, त्यागै व्रताईं निभाय॥४३५॥

॥ ग्यारह प्रतिमा (उपसंहार) ॥

प्रतिमा एकादश जैन, जिन उक्त जिनागम ।
पालत भव्य जीवस्य, मन शुद्ध स्वात्म चिन्तन॥४३६॥

प्रतिमा पालैं ग्यारहों, जिनवर कथन प्रमाण ।
भव्य जीव पालैं सुधी, कर निज चिन्तन ज्ञान॥४३६॥

॥ पचाणुव्रत ॥

अणुव्रत पच उत्पाधन्ते, अहिंसानृत उच्यते ।
स्तेय ब्रह्म व्रत शुद्ध, अपरिग्रह म उच्यते ॥४३७॥

सत्य अहिंसा स्तेय व्रत, ब्रह्मचर्य निज नार ।
कर प्रमाण परिग्रह तनो, पंच अणुव्रत धार॥४३७॥

॥ अहिंसा अणुव्रत ॥

हिंसा असत्य सहितस्य, राग दोष पापादिक ॥
थावर त्रस आरम, त्यक्तवे जे निचक्षणा ॥४३८॥

राग द्वेष पापादि जंह, त्रस थावर को घात ।
हिंसा ऐसी त्यागिये, प्रथम अणुव्रत बात ॥४३८॥

॥ सत्याणुव्रत ॥

अनृत अनृ। राक्य, अनृत अचेत दिष्टते।
यगाश्रत वचन भाक्त च, अनृत तस्य उच्यते ॥४३६॥



सत्य वही हितमित मयी, प्रिय जंह वचन विलास।
जड़ता तज निज रूप लख, अणुव्रत सत्य समास।४३६।



॥ अचौर्याणुव्रत ॥



स्तेप स्तेप कर्मस्य चौरी भाव न क्रीयते।
जिन उक्त वचन शुद्ध, अस्तेय लोप न कृत ॥४४०॥



नहिं लोपें जिन वचन जे, नहि अदत्त लें द्रव्य।
व्रत अचौर्यधारी वही, निकट मोक्ष वस भव्य।४४०।



॥ ब्रह्मचर्याणुव्रत ॥

ब्रह्मचर्य च शुद्ध च अब्रम भाव च विकथ ।
विरहा राग मिथ्यात्व, त्यक्त यम व्रत ध्रुव ॥४४१॥

ब्रह्मचर्य अणुव्रत यही, निज नारी अनुराग ।
विकथा भाव अब्रह्म के, त्यागे सब ही राग ॥४४१॥

॥ ब्रह्मचर्याणुव्रत ॥

मन वचन काय शुद्ध, शुद्ध समय जिनागम ।
विकहा काम सद्भाव, त्यक्त ब्रह्मचारिना ॥४४२॥

काम वासना है वहां, जंह विकथा के भाव ।
ब्रह्मचर्य धारी तजे, मन, वच, शुद्ध करावा॥४४२॥

॥ परिग्रह-प्रमाणाणुव्रत ॥

परिग्रह प्रमाण कृत्वा, परद्रव्य न दृष्टते।
अनृत असत्य तिक्त च, परिग्रह प्रमाणस्तथा। ॥४४३॥

परिग्रह को परिमाण कर, परधन चित मत देय।
यही परिग्रह त्याग व्रत, श्रावक शुद्ध गहेय॥४४३॥

॥ उत्कृष्ट श्रावक ॥

एतात क्रिया सयुक्त, सम्यक्त सार्धं ध्रुव।
ध्यान शुद्ध समयस्य, उत्कष्ट श्रावक ध्रुव ॥ ४४४॥

उपर्युक्त सबही क्रिया, पालो सम्यक रूप।
ध्यान और सम्यक्त्व शुभ, उत्तम श्रावक रूप॥४४४॥

॥ साधु-महिमा ॥

साधुओ साध लोकेन, रत्नत्रय मय सदा ।
ध्यानं ति अर्थ शुद्ध च, अवद्ध ते न दिस्ते ॥४४५॥

सर्व साधु हैं लोक में, रत्नत्रय साधन्त ।
ध्यान तीर्थमें मगन सो, मति, श्रुत, अवधि लहंत।४४५।

॥ साधु - महिमा ॥

न्यान चारित्र सम्पूर्ण, क्रिया त्रेपन संजुत ।
तप च व्रत समितिं च, गुप्ति त्रय पालये ॥४४६॥

पहिले त्रेपन ही क्रिया, साधन कर मुनि होय ।
समिति गुप्तियुत व्रतधरे, वह तपसी शुभ जोय॥४४६॥

॥ साधु-महिमा ॥

चारित्र चरण शुद्ध, समय शुद्ध च उच्यते ।
सम्पूर्ण ध्यान योगेन, साधवो साधु लोकय ॥४४७॥

उज्वल हो चारित्र जह, निज स्वरूप पहिचान ।
पूर्ण वही गुरु मानिये, साधु लोक में जान॥ ४४७॥

॥ साधु-महिमा ॥

सम्यकदर्शन न्यान, चारित्र शुद्ध संजम ।
जिन रूप शुद्ध द्रव्यार्थं, साधओ साधु उच्यते ॥४४८॥

धारण कर जिन लिंग को, सम्यक दर्शन ज्ञान ।
सतसम्यक चारित्र मय, साधु नमू पहिचान॥४४८॥

॥ साधु-महिमा ॥

उर्ध्वं अधो मध्य च लोकालोक विलोकित ।
आत्मान शुद्धात्मान, महात्मा महाव्रत ॥४४९॥



महाव्रती शुद्धात्मा, है महात्मा वोह ।
निज स्वरूप में तीन ही, देखै लोक, अलोह ॥४४९॥



॥ साधु-महिमा ॥

धर्म ध्यान च संयुक्त, प्रकाशक धर्म शुद्धये ।
जिन उक्त जस्य सर्वज्ञ, वचन तस्य प्रकाशये ॥४५०॥



जो जो श्री सर्वज्ञ ने, तत्त्व प्रकाशे वोह ।
धर्म ध्यान कर युक्त वह, जिनवर बंदू जोह ॥४५०॥



॥ साधु-महिमा ॥

मिथ्यात्व त्रय शल्य च, कुज्ञान त्रति उच्यते ।
राग दोष च एतानि, त्यक्तते शुद्ध साधव ॥४५१॥

शल्य तीन मिथ्यात हैं, तीनों त्याग कुज्ञान ।
राग द्वेष सबही तजे, वह मुनि परम सुजान ॥४५१॥

॥ साधु-महिमा ॥

अप्प च तारण शुद्ध, भव्य लोकैक तारक ।
शुद्ध च लोक लोकांत, ध्यानारूढ च साधव ॥४५२॥

भवदधि से खुद पार हो, भव्य जीव उद्धार ।
तारण तरण समर्थ वह, ध्यानारूढ उदार ॥४५२॥

॥ माघु-माहिमा



मनन शुद्ध भावस्य, शुद्ध तत्त्व च दिष्टते ।
सम्यग्दर्शन शुद्ध, शुद्ध ति अर्थ सजुत ॥४५३॥



माने शुद्ध स्वभाव को, शुद्ध तत्त्व पहिचान ।
सम्यकदर्शन तीर्थ युत, श्री मुनिराज महान॥४५३॥



॥ साधु-महिमा ॥



रत्नत्रय शुद्ध सम्पूर्ण सम्पूर्ण ध्यान आदर्श ।
रिजु विपुल च उत्पाद्यन्वे, मन पर्यय ध्यान शुद्धं [illegible]



रत्नत्रय से पूर्ण मुनि, ध्यान शुद्ध [illegible] ।
मनपरजय,ऋजुविपुलमय, तनहिं [illegible]



॥ साधु-महिमा ॥

वैराग्य त्रितय शुद्ध, ससारे तिक्तवे तृण ।

भूषण रत्नत्रय शुद्ध, ध्यानारूढ स्वात्म चिन्तन ॥४५५॥

जग तन, भोग विरक्त मन, रत्नत्रय कर युक्त ।

निजानन्द धारी परम, ध्यानारूढ सयुक्त ॥४५५॥

॥ साधु-महिमा ॥

केवल भावन कृत्वा पदवीं अरहन्त साधय ।

चरण शुद्ध समय च, नत चतुष्टे सुयुत ॥ ४५६ ॥

केवल भावे भावना, सरधै पद अरहन्त ।

निज स्वरूप चारित्र गह, चार चतुष्टयवन्त ॥४५६॥

॥ साधु-महिमा ॥

साधयो साधु लोकेन, तप व्रत क्रिया सजुत ।
साधयो शुद्ध ध्यानस्य, साधयो मुक्ति गामिनो ॥४५७॥

साधू साधन लोक में, तप, व्रत, क्रिय शुभ ज्ञान ।
साधै ध्यान सु साधना, साधू शिवमग गाम ॥४५७॥

॥ अरहन्त-महिमा ॥

अर्हत अर्ह देव, सर्वज्ञ केवल ध्रुव ।
अनन्तानन्त दिष्टन्ते केवल दरसन दर्शन ॥४५८॥

अरह, अरह, अरहन्त प्रभु, केवल अचल स्वभाव ।
देखै केवल दर्श में, लोकालोक स्वभाव ॥४५८॥

॥ सिद्ध - महिमा ॥

सिद्ध सिद्धि मयक, अष्ट गुण च सयुत ।
अनाहत व्यन्ज रूपण, सिद्ध शाश्वत गुर ॥ ४५९ ॥

सिद्ध, सिद्धियुत, अष्टगुण, सहित चिदातम रूप।
मोक्ष महल में राजते, शाश्वत अचल सरूप॥४५९॥

॥ उपसंहार ॥

परमेष्ठी सार्धन कृत्वा, शुद्ध सम्यक्त्व धारना ।
ते नरा कर्म क्षिपन च, मुक्ति गामी न संशय ॥४६०॥

परमेष्ठी श्रद्धान कर, सम्यकदर्शन धार ।
कर्म हीन हो शीघ्र नर, लेनिर्भक शिवसार ॥४६०॥

॥ उपसहार ॥

त्रिविधि पथ च प्रोक्त च, सार्धं न्यान मय ध्रुव ।
धमार्थं काम मोष च, प्राप्त परमेष्ठी नम. ॥४६१॥

तीन पात्र आदिक कथन, कियो ग्रन्थ विस्तार ।
पायो चौ पुरुपार्थ तिन, नमहु पच पद सार॥४६१॥

॥ उपसहार ॥

परमानन्द आनन्द जिन उक्त शाश्वत पद ।
एको उवएस उपदेश च, जिन तारण मुक्ति पथ ध्रुव ॥४६२॥

परम, परम, आनन्द है, जिनवाणी उपदेश ।
तारण तरण समर्थ हो, मुक्ति मार्ग शुभ देख ॥४६२॥

॥ * ॥ समाप्त ॥ * ॥



अन्तिम - निवेदन !



मगल श्री तारण तरण, मगल जिनवर देव ॥
मगल जिन शासन सुविधि, करो उदगल छव ॥१॥

श्रीगुरु तारण तरण कृत, ग्रंथ श्रावकाचार ॥
दोहा पद्यऽनुवाद यह, अल्प बुद्धि अनुसार ॥२॥

उन्निस सौ पचानवे, विक्रम सवत माहि ॥
आश्विन वदि नवमी दिवस, ब्रह्मचर्य पद छाहि ॥३॥

जिला छिन्दवाड़ा निकट, कुण्डा नगर मनोज्ञ ॥
सत्धर्मी जन वसत तह, धम भाव उद्योग [illegible]

उतसाही श्रीयुत सुजन, गोकलचद्र [illegible]
कालराम सुभक्तकर जिन गुण गावन [illegible]

मैनेजर सज्जन सरल, भुवनलाल [illegible]
खेमकरण जी जैन के, धन्य [illegible]

श्रीयुत चुन्नीलाल जी, आता [illegible]
पटवारी श्रीमान् शुभ, [illegible]

श्रीयुत पूनाराम जी [illegible]
पडित नाथेलाल जी, [illegible]

श्रीयुत बाबूलाल जी, सेठ सु भौंरीलाल।
लखमीचन्द सु टेकचन्द, पण्डित बाबूलाल ॥९॥

काल्हूराम रु सरल मति, मूरतलाल कहाय।
अमरलाल, मानिकचन्द, हीरालाल लहाय ॥१०॥

सरकारी शाला तहा, पण्डित गया प्रसाद।
ब्राह्मण नम्र विचार युत, धन्य २ धनवाद ॥११॥

असिस्टेंट मास्टर सरल, भार चिन्तरन लाल।
आदि २ गुणवन्त नर, प्रेमी प्रेम-निहाल ॥१२॥

नगर नाथ श्रीमन्त श्री, बाबूलाल सु नम्र।
बालकृष्ण 'खिनकुवर, द्वै, भ्राता सज्जन धन्य ॥१३॥

सेठ सु चम्पालाल जी, सरल मिलन गुणहार।
आदि २ सज्जन सकल, गिनत लगैगी बार ॥१४॥

रमण रमण रमणीक अति, कुडा नगर सुहाय।
मध्य नगर तारण तरण, चैत्यालय सुखदाय ॥१५॥

तहा बसे आसन लगा, चातुर्मास बिताय।
यह अनुवाद लिखो तथा, और २ रचनाय ॥१६॥

उक्त सकल सज्जन सुधी, कियो धर्म उत्साह।
चार माह मालूम नहीं, पड़े हमें कित गाह ॥१७॥

वर्षा में उनचास दिन वाणी श्री छद्मस्थ ।
ग्रन्थ राज प्रवचन भयो प्रात काल समस्थ ॥१८॥

पुन विमानोत्सव निमल, जुरी सकल सु समाज ।
कहँ कहाँ लों धर्म की, अति प्रभावना साज ॥१९॥

जयवन्तो जिनधर्म वर, जयवन्तो गुरु देव ।
जय जय जय वन्तो विमल, जिनवाणी सुर मेव ॥२०॥

ग्रन्थ श्रावकाचार में भूल चूक अनुवाद ।
जो होवे कीजे क्षमा, सज्जन रहित विवाद ॥२१॥

॥ प्रवचन-समारोह ॥

ग्रन्थ श्रावकाचार का, भयो ग्रन्थ सप्ताह ।
नगर सिंगोड़ी के विषै, दानवीर उतसाह ॥२२॥

गुरुकुल की स्थापना, तथा शास्त्र उद्धार ।
व्रती सुरक्षा कारणे, त्याग कियो अतिसार ॥२३॥

दान भावना में पगे, लखे धर्म की राह ।
धन्य २ ऋतु श्रावकहिं, धरी प्रतिज्ञा चाह ॥२४॥

दर्शन प्रतिमा प्रथम है करै जन्म उद्धार ।
नगर सिंगोड़ी में धरी धन्य सुसज्जन चार ॥२५॥

परशराम पण्डित गुणी, मुन्नालाल तथैव ।
मुंशी [illegible]राम जी मानकचद गुणव ॥२६॥

आदि परम उत्साह जुत तिलक समाप्ती कीन ।
दानवीर सिंघई श्री, हीरालाल प्रवीन ॥२७॥

उत्साही प्रिय नवयुवक, बाबू नोखेलाल ।
धर्म–भावना म पगो [illegible] रहा खुशलाल ॥२८॥

अथ श्रावकाचार यह, दानवीर छपवाय ।
ज्ञान दान महिमा अकथ, जन्म [illegible] सुख पाय [illegible]९॥

श्री[illegible]त गोकलचद्र सुत, शकरलाल प्रमाण ।
तिनके अति परिश्रम थकी ग्रथ छप्या अघाण ॥३०॥
पढ़ो, सुनो, मानो, गुणो सदाचार चितलाय ।
दुर्लभ यह नर जन्म को, यही सफल सदुपाय ॥३१॥
जयकुमार विनवे विविध, क्षमा करो गुणवान ।
भूल चूक जो हाय कछु, अल्प बुद्धि पहिचान ॥३२॥
जय जय जय तारण तरण, जय जय जय जिन बैन ।
जयकुमार विनवै विविधि क्षुल्लक हो जयसेन ॥३३॥

कुण्डा
(छिन्दवाड़ा)
चातुर्मास –
सं० १९९५

जिनवर चरण चचरीक
ब्रह्मचारी जयकुमार
(वर्तमान-क्षु० जयसेन)